अध्याय–8

संसदीय विशेषाधिकार

विशेषाधिकार का स्वरूप

एरस्किन मे के अनुसार ''संसदीय विशेषाधिकार प्रत्येक सदन द्वारा सामूहिक रूप से ... और प्रत्येक सदन के सदस्यों द्वारा वैयक्तिक रूप से उपयोग किये जाने वाले ऐसे विशिष्ट अधिकारों का समुच्चय है जिनके अभाव में वे अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकते हैं और जो अन्य निकायों और व्यक्तियों को प्राप्त अधिकारों से अधिक हैं। इस तरह से विशेषाधिकार देश के कानून का अंग होते हुए भी सामान्य कानून से कुछ सीमा तक मुक्त है। गिरफ्तारी से मुक्ति, वाक्–स्वातंत्र्य जैसे कतिपय अधिकार और उन्मुक्तियां मुख्यत: प्रत्येक सदन के वैयक्तिक सदस्यों को उपलब्ध हैं और इसकी वजह यह है कि सदन अपने सदस्यों की सेवाओं का निर्बाध रूप से उपयोग किये बिना अपने कार्यों का निष्पादन नहीं कर सकता है। मुख्यत: प्रत्येक सदन को सामूहिक निकाय के रूप में अन्य ऐसे अधिकार और उन्मुक्तियां भी प्राप्त हैं जैसाकि अपने सदस्यों की सुरक्षा हेतु और अपने स्वयं के प्राधिकार और सम्मान की रक्षा हेतु अवमानना के लिए दण्डित करने की शक्ति और अपनी स्वयं की संरचना को विनियमित करने की शक्ति। तथापि, मूलत: यह सदन के सामूहिक कार्यों को प्रभावी ढंग से निष्पादित करने का साधन मात्र है और सदस्य इसी प्रयोजन से इन वैयक्तिक विशेषाधिकारों का उपयोग करते हैं।

''जब इनमें से किसी अधिकार और उन्मुक्ति का अनादर किया जाता है या उसका उल्लंघन किया जाता है, तो ऐसे अपराध को विशेषाधिकार भंग की संज्ञा दी गई है और यह संसद् की विधि के अन्तर्गत दण्डनीय है। प्रत्येक सदन ऐसे कार्यों को अवमान के रूप में दण्डित करने का अधिकार होने का दावा भी करता है जिनसे कोई विशिष्ट विशेषाधिकार तो भंग नहीं होता परन्तु इसके कृत्यों के निष्पादन में व्यवधान या अवरोध उत्पन्न होता है अथवा जिनसे इसके प्राधिकार या सम्मान का तिरस्कार होता है, जैसाकि इसके विधि–सम्मत आदेशों की अवज्ञा अथवा इसके सदस्यों के या इसके अधिकारियों के प्रति अपमान वचन।''[1]

अवमान क्या है

''सामान्यत: ऐसा कोई कार्य या त्रुटि, जो संसद् के किसी भी सदन के कार्यों के निष्पादन में अवरोध या व्यवधान उत्पन्न करता है या जो ऐसे सदन के किसी सदस्य या अधिकारी के अपने कर्त्तव्य के निर्वहन में अवरोध या व्यवधान उत्पन्न करता है या जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे परिणाम उत्पन्न करने वाला हो, तो उसे अवमान माना जायेगा, यद्यपि इस प्रकार के अपराध का कोई पूर्वोदाहरण नहीं है।''[2]

अत: इन विशेषाधिकारों की व्याख्या करने में इस सामान्य सिद्धान्त का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सदस्यों को ''संसद् में अपने दायित्वों को बिना किसी रुकावट या व्यवधान के निष्पादित करने'' के प्रयोजन से संसदीय विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं।[3] ये विशेषाधिकार सदन द्वारा निर्बाध रूप से अपने

कार्यों को निष्पादित करने के लिए आवश्यक सीमा तक ही वैयक्तिक सदस्यों को प्राप्त हैं।''ये सदस्य को, सदस्य होने के नाते कहीं अधिक ऐसे सामाजिक दायित्वों से, जो दूसरे नागरिकों पर लागू होते हैं, मुक्त नहीं करते हैं।''[4] संसदीय विशेषाधिकार कानून के मामले में किसी संसद्-सदस्य और सामान्य नागरिक के बीच तब तक कोई विभेद नहीं करते हैं जब तक कि संसद् के हित में इस प्रकार का विभेद किये जाने के उचित और यथेष्ठ कारण न हों।[5]

संवैधानिक उपबंध

संविधान में कुछ विशेषाधिकारों का उल्लेख किया गया है। ये हैं–संसद् में वाक्-स्वातंत्र्य,[6] संसद् या उसकी किसी समिति में सदस्य द्वारा कही गई किसी भी बात या उसके द्वारा दिये गये मत के सम्बन्ध में किसी न्यायालय में किसी प्रकार की कार्यवाही से उसे प्राप्त उन्मुक्ति,[7] संसद् के किसी भी सदन द्वारा या उसके प्राधिकार के अन्तर्गत किसी प्रतिवेदन, पत्र, मतों या कार्यवाहियों को प्रकाशित करने के संबंध में किसी न्यायालय में कार्यवाही से किसी व्यक्ति को प्राप्त उन्मुक्ति।[8] न्यायालयों को प्रक्रिया संबंधी कथित अनियमितताओं के आधार पर संसद् में किन्हीं भी कार्यवाहियों की वैधता की जांच करने से प्रतिषिद्ध किया गया है।[9] प्रक्रिया अथवा कार्य-संचालन को विनियमित करने अथवा संसद् में व्यवस्था बनाये रखने के लिए शक्ति प्रदत्त कोई भी अधिकारी या संसद्-सदस्य उसके द्वारा उन शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी न्यायालय की अधिकारिता में नहीं लाया जा सकता है।[10] संसद् के किसी सदन की कार्यवाहियों की सही रिपोर्ट को किसी समाचार-पत्र में प्रकाशित करने के लिए, जब तक कि यह सिद्ध नहीं हो जाता है कि इस प्रकार की रिपोर्ट को दुर्भावनावश प्रकाशित किया गया है, किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध किसी न्यायालय में सिविल या आपराधिक कार्यवाही नहीं की जा सकती है। बेतार वाले तार-संचार माध्यमों से प्रसारित रिपोर्ट या विषयों के बारे में भी यह उन्मुक्ति उपलब्ध है।[11] तथापि, सदन की किसी गोपनीय बैठक की कार्यवाहियों के प्रकाशनार्थ यह उन्मुक्ति उपलब्ध नहीं है।[12]

अन्य बातों में, संसद् के प्रत्येक सदन की और प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां ऐसी होंगी जो संसद्, समय-समय पर विधि द्वारा, परिनिश्चित करे और जब तक वे इस प्रकार परिनिश्चित नहीं की जाती हैं तब तक वही होंगी जो संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 की धारा 15 के प्रवृत्त होने से ठीक पहले उस सदन की और उसके सदस्यों और समितियों की थीं।[13]

> संविधान निर्माताओं ने सदस्यों आदि के लिए संविधान के प्रारम्भ के समय 'हाउस ऑफ कॉमन्स' को जो शक्तियां और विशेषाधिकार प्राप्त थे उन्हीं शक्तियों और विशेषाधिकारों का उपबंध किया है। अनुच्छेद 105 के खण्ड (3) में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के उल्लेख का संविधान (चवालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा विलोप कर दिया गया है। तथापि, चूंकि संसद् द्वारा विशेषाधिकार की व्याख्या करते हुए अभी तक कोई कानून नहीं बनाया गया है। अत: वास्तव में अभी भी वही स्थिति बनी हुई है जोकि संविधान के आरम्भ के समय थी।

सांविधिक उपबंध

संविधान में विनिर्दिष्ट विशेषाधिकारों के अतिरिक्त सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में सदन या इसकी समिति की बैठक के दौरान तथा इसके आरम्भ होने से चालीस दिन पूर्व और इसकी समाप्ति के चालीस

दिन पश्चात् सिविल प्रक्रिया के अन्तर्गत सदस्यों की गिरफ्तारी और उन्हें निरुद्ध किये जाने से स्वतंत्रता का उपबंध किया गया है।[14]

प्रक्रिया संबंधी नियमों और पूर्व निर्णयों पर आधारित विशेषाधिकार

सदन को किसी आपराधिक आरोप पर या किसी अपराध के लिए किसी सदस्य की गिरफ्तारी, उसे निरुद्ध किये जाने, दोषसिद्ध ठहराये जाने, कैद किये जाने और रिहा किये जाने की तुरन्त सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।[15]

सदन के सदस्यों या अधिकारियों को सदन की अनुमति के बिना न्यायालयों में सदन की कार्यवाही से संबंधित साक्ष्य देने या दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।[16]

सदन के सदस्यों या अधिकारियों को सदन की अनुमति के बिना और उस सदस्य की सहमति के बिना जिसकी उपस्थिति आवश्यक है, दूसरे सदन या राज्य विधान-मंडल के किसी सदन या उसकी किसी समिति के समक्ष साक्षियों के रूप में उपस्थित होने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है।[17]

सदन की पारिणामिक शक्तियां

उपर्युक्त विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों के अतिरिक्त प्रत्येक सदन को अपने विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों की संरक्षा के लिए आवश्यक कतिपय पारिणामिक शक्तियां भी प्राप्त हैं। ये शक्तियां हैं: विशेषाधिकार उल्लंघन या सदन के अवमान के लिए व्यक्तियों को चाहे वे सदस्य हों या नहीं, सुपुर्द करना;[18] साक्षियों को उपस्थित होने के लिए विवश करना और व्यक्तियों, दस्तावेजों और अभिलेखों को बुला भेजना;[19] अपनी प्रक्रिया और कार्य-संचालन को विनियमित करना;[20] अपने वाद-विवाद और कार्यवाहियों के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करना[21] और अपरिचित व्यक्तियों को प्रवेश से वर्जित करना।[22]

सदन की शास्तिक शक्तियां

यदि कोई व्यक्ति या प्राधिकारी सदन अथवा सदस्यों अथवा सदन की समितियों के किसी विशेषाधिकार, शक्तियों और उन्मुक्तियों का अतिक्रमण करता है या उसकी अवहेलना करता है तो उसे ''विशेषाधिकार भंग करने'' या ''सदन का अवमान करने'' के लिए दण्ड दिया जा सकता है। सदन के पास इस बात का निश्चय करने की शक्ति है कि कौन-सा मामला विशेषाधिकार-भंग का मामला है और कौन-सा अवमान का। इस संबंध में सदन के सदस्य और बाहरी व्यक्ति तथा विशेषाधिकारों के अतिक्रमण का प्रत्येक कार्य, चाहे वह सदन में किया गया हो या सदन के बाहर, सदन की शास्तिक अधिकारिता के अंतर्गत आता है।

विशेषाधिकार-भंग या सदन के अवमान के लिए दोषी पाये गये व्यक्ति को कारावास[23] या भर्त्सना (चेतावनी)[24] या धिग्दंड[25] से दंडित किया जा सकता है। अवमान के लिए सदस्यों को दो अन्य दण्ड, अर्थात् सदन से ''निलम्बन''[26] और ''निष्कासन''[27] भी दिए जा सकते हैं।

बोलने की स्वतंत्रता और न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति

सदस्यों को सदन में बोलने की स्वतंत्रता है और उन्हें संसद् में या संसद् की किसी समिति में कही गई किसी बात या उनके द्वारा दिये गये किसी मत की बाबत न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति (छूट) प्राप्त है।

वस्तुत:, सदस्यों के लिए सदन में बोलने की स्वतंत्रता, उनके संसदीय कर्त्तव्यों के दक्षतापूर्वक पालन हेतु आवश्यक पूर्वापेक्षा है, जिसकी अनुपस्थिति में वे निर्भय होकर सदन में अपने मन की बात कहने और अपने विचार व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। संसद् सदस्यों के इस अधिकार के महत्त्व को, सदन के भीतर या सदन की किसी समिति में कोई भाषण/प्रकटीकरण या कोई मत देने के लिए न्यायालय में सिविल या दांडिक कार्यवाही किए जाने से उनको उन्मुक्ति प्रदान करके रेखांकित किया गया है। किसी सदस्य द्वारा अपने संसदीय कर्त्तव्यों का पालन करते हुए कही गई किसी बात या किए गये किसी कार्य की संसद् के बाहर जांच करना, संसद् में सदस्य की बोलने की स्वतंत्रता में गम्भीर हस्तक्षेप है। अत: सदन के भीतर किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गये किसी मत के कारण उस पर प्रहार करना या उसके विरुद्ध कार्यवाही करना या कार्यवाही करने की धमकी देना, जिसमें कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ करना सम्मिलित है, किसी सदस्य के विशेषाधिकारों का भारी अतिक्रमण होगा।

संसद् में कही गई बात, भले ही वह सदन के समक्ष कार्य से सर्वथा संबंधित न हो, अनुच्छेद 105(2) के अधीन सदस्यों को प्रदान की गई उन्मुक्ति के अन्तर्गत आती है। जैसा उच्चतम न्यायालय ने कहा है:

> ''यह अनुच्छेद संसद् में कही गई किसी बात की बाबत, अन्य बातों के साथ-साथ उन्मुक्ति प्रदान करता है, इसमें ''किसी बात'' का अत्यधिक महत्त्व है और यह ''प्रत्येक बात'' के समतुल्य है। ''संसद् में'' शब्दों से ही एक मात्र परिसीमा उत्पन्न होती है, जिसका आशय है संसद् की बैठक के दौरान और संसद् के कार्य के दौरान ...। एक बार यह साबित हो जाने पर कि उस समय संसद् की बैठक चल रही थी और संसदीय कार्य किया जा रहा था, उस कार्य के दौरान कही गई किसी बात को न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति प्राप्त होगी। यह उन्मुक्ति न केवल पूर्ण है बल्कि ऐसी है जैसी कि होनी चाहिये ...। न्यायालयों का इस मामले में कोई दखल नहीं है और वस्तुत: उनका दखल होना भी नहीं चाहिये।''[28]

सदन के भीतर सदस्यों को उपलब्ध वाक्-स्वातंत्र्य अनुच्छेद 19(2) के अधीन नागरिकों को उपलब्ध वाक्-स्वातंत्र्य से भिन्न है। नागरिकों के वाक्-स्वातंत्र्य पर उपयुक्त प्रतिबंधों का उपबंध करते हुए इस अनुच्छेद के अधीन बनाए गये किसी कानून की परिधि के अन्तर्गत सदन की चारदीवारी के भीतर सदस्यों को प्राप्त वाक्-स्वातंत्र्य नहीं आयेगा।[29] इस मामले में सदस्यों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त है, भले ही सदन में उनके द्वारा बोले गये शब्द विद्वेषपूर्ण और उनकी जानकारी में मिथ्या हों।[30] सदन में दिए गये भाषण के लिए भले ही उससे न्यायालय का अवमान क्यों न होता हो, किसी सदस्य के विरुद्ध कार्यवाही करना न्यायालय की अधिकारिता में नहीं है।[31]

इस तरह, अनुच्छेद 105 के खण्ड (1) और (2) में अन्तर्विष्ट स्पष्ट संवैधानिक उपबंध वाक्-स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार और सदन में कही गई या सदन के प्रतिवेदनों में प्रकाशित किसी बात के विधिक दायित्व से उन्मुक्ति के मामले में एक पूर्ण और निश्चायक संहिता है। अत: इन उपबंधों की परिधि से बाहर की कोई बात न्यायालयों द्वारा विधि के अनुसार निबटाई जानी चाहिए। इस प्रकार, यदि कोई सदस्य उन प्रश्नों को प्रकाशित करता है जो सभापति द्वारा अस्वीकृत कर दिए गये हैं और जो मानहानिकारक हैं तो उसके संबंध में किसी न्यायालय में मानहानि की विधि के अधीन कार्यवाही की जाएगी।[32]

तथापि, सदन में वाक्-स्वातंत्र्य का अधिकार, संवैधानिक उपबंधों[33] और प्रक्रिया विषयक नियमों[34] द्वारा परिसीमित किया गया है। जब कोई सदस्य किसी नियम का अतिक्रमण करता है तो सभापीठ को ऐसी स्थिति से निपटने के लिए नियमों द्वारा विपुल शक्तियां प्रदान की गई हैं।[35]

सदन में सदस्य के बोलने के अधिकार और कार्यवाही के अधिकार के मामले में प्रदत्त उन्मुक्ति को ध्यान में रखते हुए, इस अधिकार के दुरुपयोग का जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है जिसके लिए जनता, अन्यथा, न्यायालय के संरक्षण की मांग कर सकती थी। अत:

जनप्रतिनिधि होने के नाते सदस्यों पर इस अधिकार का प्रयोग अत्यंत सावधानी के साथ और देश के कानून पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना करने का भारी दायित्व है। विशेषाधिकार समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि किसी भी संसद्-सदस्य को सदन की चारदीवारी के भीतर बोलने की प्रतिबंधरहित छूट प्राप्त नहीं है। समिति ने यह टिप्पणी की है:

> ''किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई मानहानिकारक वक्तव्य देना या अभियोगात्मक आरोप लगाना संसदीय वाद-विवाद और शालीनता के नियमों के विरुद्ध है और यदि ऐसे आरोप किन्हीं ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध लगाये जाते हैं जो सदन में स्वयं अपना बचाव करने की स्थिति में नहीं हैं तो यह और भी बुरी बात है। वाक्-स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार केवल तभी सुरक्षित रह सकता है जब सदस्य इसका दुरुपयोग न करें।''[36]

उक्त टिप्पणी करते समय समिति ने हाउस ऑफ कॉमन्स की विशेषाधिकार समिति के दूसरे प्रतिवेदन (खण्ड 1978-79) (एच सी 222, पी वी पैरा 10) में अन्तर्विष्ट निम्नलिखित टिप्पणियों को स्वीकार करते हुए उल्लेख किया है:

> संसद् के कार्य में वाक्-स्वातंत्र्य का विशेषाधिकार एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक तत्व है। तथापि, जिस प्रकार की उन्मुक्ति यह प्रदान करता है उसके कारण इसके दुरुपयोग का गंभीर प्रभाव हो सकता है। आपकी समिति को सुविदित है कि समय-समय पर सदस्य अपनी बात कहने की उत्सुकता में वाक्-स्वातंत्र्य के अपने विशेषाधिकार का उपयोग कुछ इस प्रकार कर सकते हैं जो अन्य सदस्यों द्वारा अनुचित माना जाएगा, क्योंकि इससे अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारों अथवा स्वतंत्रताओं को नुकसान हो सकता है और उन व्यक्तियों को विषम क्षति पहुंच सकती है जो अन्यथा न्यायालय से संरक्षण की मांग कर सकते थे। अत: आपकी समिति सभी सदस्यों की इस बाध्यता पर जोर देना उचित समझती है कि सभा में ऐसे वक्तव्य देने का निर्णय लेते समय, जिन्हें, यदि सभा के बाहर दिया जाता तो वे मानहानिकारक या आपराधिक होते, इस बात का ध्यान रखें कि समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने और कार्यवाही के प्रसारित होने पर उन वक्तव्यों के व्यापक प्रभाव होंगे और उस प्रतिकूल और संभवत: अनुचित क्षति का भी ध्यान रखें जो उन नागरिकों को हो सकती है जो न तो उसका प्रतिकार कर सकते हैं और न उत्तर दे सकते हैं।

अनुच्छेद 105(2) के उपबंध उन व्यक्तियों, जिन्हें संविधान के आधार पर किसी भी सदन में या उसकी किसी समिति[37] में बोलने, और अन्यथा कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है, के मामले में भी उसी तरह लागू होते हैं जिस तरह वे संसद्-सदस्यों के मामले में लागू होते हैं।[38]

सदन में किसी सदस्य द्वारा प्रकट की गई बात के लिए उससे प्रश्न किया जाना

सदन के भीतर दिये गये किसी भाषण/प्रकट की गई किसी बात या दिये गये किसी मत के लिए किसी बाहरी निकाय द्वारा सदस्यों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता और उनसे कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता। सदन में उनके वाक्-स्वातंत्र्य को प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है। यह एक निश्चित प्रक्रिया भी है कि सदन का कोई भी सदस्य या अधिकारी पहले सदन की अनुमति प्राप्त किए बिना सदन या उसकी किसी समिति की किसी कार्यवाही के संबंध में अथवा ऐसे किसी दस्तावेज के संबंध में किसी न्यायालय में साक्ष्य नहीं देगा जो उक्त कार्यवाही से संबंधित या सम्बद्ध हो अथवा सदन के अधिकारी की अभिरक्षा में रखा गया हो, और न ही वह ऐसे किसी दस्तावेज को पेश करेगा।[39]

जहां तक सदन के भीतर किसी सदस्य द्वारा कोई बात प्रकट करने तथा किसी बाहरी निकाय के प्रति उसकी जवाबदेही का संबंध है, विशेषाधिकार समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की है:

> ''... यदि किसी सदस्य द्वारा संसद् में कोई बात प्रकट करने के लिए उससे संसद् से बाहर किसी स्थान पर प्रश्न किया जाता है तो यह उस संसद्-सदस्य के लिए सदस्य के रूप में कर्त्तव्य पालन में एक बाधा होगी। ब्रिटेन की तरह भारत में भी स्वतंत्र रूप से और किसी भय या पक्षपात के बिना कार्य करने का संसद्-सदस्य

> का अधिकार, एक संवैधानिक गारंटी है। यह गारंटी केवल सदन के नियमों और अंततः स्वयं सदन की अनुशासनात्मक अधिकारिता के अध्यधीन है ... किसी सदस्य द्वारा संसद्-सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए कही गई किसी बात या किए गये किसी कार्य की संसद् के बाहर जांच कराना ऐसे सदस्य के रूप में उसके कर्त्तव्यों के निर्वहन से संबंधित अधिकार के साथ गंभीर हस्तक्षेप होगा।''[40]

यदि किसी मामले में कोई सदस्य सदन के भीतर कोई ऐसी बात कहता है जो किसी आपराधिक जांच से सीधे संबंधित हो सकती है और जो जांच प्राधिकारियों के विचार से सकारात्मक साक्ष्य के रूप में उनके लिए विशेष महत्त्व रखती है तो इस बारे में समिति द्वारा निम्नलिखित प्रक्रिया विहित की गई है:

> .... जांच प्राधिकारी गृह मंत्री को तद्नुसार सूचित कर सकेगा। यदि मंत्री का इस बाबत समाधान हो जाता है कि उस मामले में संबंधित सदस्य की सहायता मांगना अपेक्षित है तो वह सभापति के माध्यम से सदस्य से अनुरोध करेगा कि वह उससे मिले। यदि सदस्य गृह मंत्री से मिलने और अपेक्षित सूचना देने के लिए सहमत हो जाता है तो गृह मंत्री उसका उपयोग इस तरह करेगा जो सदस्य के किसी संसदीय अधिकार के विरुद्ध न हो। तथापि, यदि सदस्य गृह मंत्री के अनुरोध का उत्तर देने से मना कर देता है तो उस मामले को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।[41]

बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करने का अधिकार

बाहरी व्यक्तियों को सदन से अपवर्जित करने का सदन का अधिकार, सदन के भीतर वाक्-स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार का आवश्यक सहगामी है। संसद् जैसे विचार-विमर्शकारी निकाय में स्वतंत्र और निष्पक्ष चर्चा के लिए वाद-विवाद की गोपनीयता विधिक कार्यवाही से उन्मुक्ति से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की है:

> ...हाउस (ऑफ कॉमन्स) द्वारा जिस वाक्-स्वातंत्र्य का दावा किया गया है और जिसे 'क्राउन' द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई है उसे आवश्यक होने पर, वाद-विवाद की गोपनीयता द्वारा सुनिश्चित किया जाता है जो वाद-विवादों और कार्यवाहियों के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करके और सदन से बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करके संरक्षित की जाती है। इस अधिकार का प्रयोग 1923 में और पुनः काफी समय बाद 18 नवम्बर, 1958 को किया गया था। इससे प्रकट होता है कि जब-जब ऐसा अवसर आया है तब-तब बाहरी व्यक्तियों को हाउस से अपवर्जित करके वाद-विवाद की गोपनीयता द्वारा स्वयं को संरक्षित करने के मामले में हाउस ऑफ कॉमन्स की उत्सुकता में कोई कमी नहीं आई है।[42]

प्रक्रिया विषयक नियम सभापति को बाहरी व्यक्तियों के प्रवेश को नियमित करने[43] और सदन के किसी भाग से उनकी वापसी का आदेश देने[44] की शक्ति प्रदान करते हैं।

कार्यवाहियों के प्रकाशन को नियंत्रित करने का अधिकार

सदन के वाद-विवादों और कार्यवाहियों के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करने की सदन की शक्ति और बाहरी व्यक्तियों को अपवर्जित करने की उसकी शक्ति का निकट संबंध है। संविधान के अधीन, संसद् के किसी भी सदन की कार्यवाहियों के प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्तियों को, सदन के प्राधिकार से या उसके अधीन ऐसा प्रकाशन किए जाने पर, न्यायालय की कार्यवाही से पूर्ण उन्मुक्ति प्रदान की गई है। संसद् की कार्यवाहियों का प्रकाशन संबंधित सदनों के नियंत्रण के अध्यधीन है।[45]

महासचिव, उस रूप में और उस रीति से जो सभापति समय-समय पर निदेश दे, सदन की कार्यवाहियों की एक पूर्ण रिपोर्ट तैयार करने और प्रकाशित करने के लिए प्राधिकृत है।[46]

जब तक यह साबित न हो जाये कि प्रकाशन विद्वेष से किया गया है तब तक समाचार-पत्र में किसी व्यक्ति द्वारा संसद् के किसी भी सदन की किसी भी कार्यवाही के सारभूत रूप से सत्य रिपोर्ट का प्रकाशन

किया जाना संविधान के अधीन न्यायालय की सिविल या दांडिक कार्यवाही से संरक्षित है।[47] ऐसे प्रकाशन को सांविधिक संरक्षा प्रदान की गई है।[48]

किन्तु जब सदन की या उसकी समितियों के वाद-विवादों या कार्यवाहियों की असद्भावपूर्वक रिपोर्ट दी जाये, अर्थात् जब विशेष सदस्यों के भाषणों की जानबूझकर गलत बयानी की जाये या उनके तथ्यों को छिपाया जाये या वाद-विवादों को विकृत करके, तोड़-मरोड़कर, और गलत अर्थ में पेश किया जाये तब सदन का विशेषाधिकार भंग होता है और उसका अवमान होता है। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया है:

> ...हमारे संविधान के प्रारंभ के समय हाउस ऑफ कॉमन्स को हाउस के भीतर होने वाले वाद-विवादों या कार्यवाहियों की सत्य और सद्भावपूर्ण रिपोर्ट के प्रकाशन को भी प्रतिषिद्ध करने की शक्ति प्राप्त थी या विशेषाधिकार प्राप्त था।
>
> सुतराम, हाउस को ऐसे वाद-विवादों का कार्यवाहियों के अशुद्ध या विकृत रूपांतर के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करने की शक्ति या विशेषाधिकार... प्राप्त था। हम इस विचार से भी सहमत नहीं हैं कि सदनों को ऐसी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां सौंपना ठीक नहीं होगा क्योंकि हम अच्छी तरह समझते हैं कि हमारे सदन प्रचार के लाभ का सम्मान करेंगे और सुस्पष्ट मामलों को छोड़कर इन शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का प्रयोग नहीं करेंगे।[49]

जैसाकि एक मामले में सभापति ने टिप्पणी की थी:

> समाचार-पत्र उस जनता, जो सदन में उपस्थित नहीं होती है, के नेत्र और कान होते हैं। जब तक सदन कोई पाबंदी न लगाये तब तक यह समझा जाना चाहिये कि समाचार-पत्रों को ऐसे किसी व्यक्ति, जो सदन या किसी विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं है, के प्रतिबंध या बाधा का विचार किए बिना कार्यवाहियों या कार्यवाही के किसी भाग को निष्पक्ष, सद्भावनापूर्ण और सही-सही प्रकाशित करने का अधिकार प्राप्त है। समाचार-पत्र पूर्णत: गलत छवि पेश करने के लिए कार्यवाही को सम्पादित करके, उसमें जोड़-तोड़ करके या गलत ढंग से कुछ बातों को विलुप्त करके मिथ्या निरूपण नहीं करेंगे।[50]

यदि कोई सदस्य सदन में उसके द्वारा दिए गये भाषण को वाद-विवाद में से पृथक् करके अलग से प्रकाशित करवाता है तो वह एक पृथक् प्रकाशन बन जाता है जिसका संसद् की किसी कार्यवाही से कोई संबंध नहीं होता है। अत: वह इस विशेषाधिकार का दावा नहीं कर सकता है और वह किसी अपमानजनक बात, जो उस प्रकाशन में हो, के लिए विधि के अधीन जिम्मेदार ठहराया जायेगा।[51]

कार्यवाही का समय-पूर्व प्रकाशन

कार्यवाहियों, विशेषकर समितियों की कार्यवाहियों के समय-पूर्व प्रकाशन को विशेषाधिकारों का अतिक्रमण और सदन का अवमान माना गया है। एक मामले में, राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति के समक्ष किसी साक्षी द्वारा दिये गये साक्ष्य के अंशों को समिति का प्रतिवेदन सदन में प्रस्तुत किए जाने से पहले ही समाचार-पत्रों में प्रकाशित कर दिया गया था। इस पर समिति ने यह निर्णय दिया था कि किसी समिति की कार्यवाहियों के समय-पूर्व प्रकाशन का कार्य विशेषाधिकार भंग और सदन के अवमान का मामला है। तथापि, समाचार-पत्रों द्वारा व्यक्त किए गये खेद और उनकी क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए समिति ने इस मामले में किसी दंड की सिफारिश नहीं की थी। सभी संबंधित व्यक्तियों को यह

चेतावनी देते हुए कि भविष्य में, समितियों की कार्यवाही के समय-पूर्व प्रकाशन अथवा प्रकटीकरण के मामले में गम्भीरता से कार्यवाही की जायेगी, समिति ने यह टिप्पणी की थी:

> यह सुस्थापित है कि किसी संसदीय समिति की कार्यवाही गोपनीय होती है और समिति की बैठकों में जो कुछ कहा गया है, जब तक उस कथन को सदन में प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता या अन्यथा उसको अगोपनीय नहीं समझा जाता तब तक उसे प्रकट नहीं किया जाना चाहिये या उसका प्रचार नहीं किया जाना चाहिये।[52]

कार्यवाही से निकाले गये अंशों का प्रकाशन

इसी तरह से सदन की कार्यवाही से निकाले गये अंशों को प्रकाशित करना विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है:

> किसी सदस्य के भाषण के किसी अंश को निकाले जाने के संबंध में अध्यक्ष के आदेश का कानूनी दृष्टि से यह प्रभाव होता है कि उक्त अंश को यह समझा जायेगा कि उसे बोला नहीं गया है। ऐसी परिस्थितियों में सम्पूर्ण भाषण की रिपोर्ट को, हालांकि तथ्यात्मक दृष्टि से सही होने पर भी कानून की दृष्टि में गलत और अविश्वसनीय रिपोर्ट माना जायेगा और भाषण की ऐसी गलत अथवा अविश्वसनीय रिपोर्ट के प्रकाशन को अर्थात् सदन में अध्यक्ष द्वारा दिये गये आदेशों का अवमान करते हुए निकाले गये अंश सहित भाषण की ऐसी गलत और अविश्वसनीय रिपोर्ट को प्रकाशित करना **प्रथम दृष्ट्या** आपत्तिजनक समाचार प्रकाशित किये जाने के कारण सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन समझा जायेगा।[53]

> श्री कुलदीप नैयर ने उनके द्वारा सदन में की गई टिप्पणियों को, जिन्हें सभापति द्वारा कार्यवाही से निकाल दिया गया था, 'दि पायनियर' के सम्पादक श्री चन्दन मित्र द्वारा एक समाचार-पत्र के सम्पादकीय में उद्धृत करने के लिए उनके विरुद्ध विशेषाधिकार भंग की सूचना दी थी। इस मामले की जांच करने तथा इस पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए इसे विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था। श्री मित्र द्वारा क्षमा-याचना किए जाने और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विरोधाभासी लेख के पीछे कोई बुरा इरादा नहीं था, समिति ने इस मामले को छोड़ने का निर्णय किया तथा तद्नुसार सदन को प्रतिवेदित किया।[54]

कार्यवाही का मिथ्या-निरूपण

संसद् की कार्यवाही के मिथ्या-निरूपण या उसकी गलत ढंग से रिपोर्ट देने को गंभीर प्रकार का विशेषाधिकार-भंग और सदन का अवमान माना जाता है।

> एक मामले में, प्रकाशकों ने वित्त (संख्यांक 2) विधेयक, 1980 को राज्य सभा द्वारा पारित किये जाने और राष्ट्रपति द्वारा सहमति प्रदान किये जाने से पूर्व ही किसी पुस्तक में वित्त (संख्यांक 2) अधिनियम, 1980 के रूप में प्रकाशित कर दिया। विशेषाधिकार समिति ने यह निर्णय किया कि लेखकों और प्रकाशकों ने सदन की कार्यवाही और कार्यों के मिथ्या-निरूपण के लिए जानबूझकर और स्वेच्छा से ऐसा किया। अत: इससे विशेषाधिकार का भंग और सदन का अवमान हुआ।[55] अत: समिति ने यह सिफारिश की कि प्रमुख अवमानकर्ता को सदन के सत्रावसान तक कारावास में रखा जाये और सह-लेखकों को सदन द्वारा धिग्दंडित किया जाये।[56] राज्य सभा के समक्ष 11 दिसम्बर, 1980 को जब समिति का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया तब सदन ने अवमानकर्ताओं को दिये गये दण्ड के बारे में अपनी सिफारिश पर पुनर्विचार करने के लिए इस मामले को पुन: समिति को सुपुर्द किये जाने का एक प्रस्ताव स्वीकृत किया।[57] इस मामले पर पुनर्विचार करते हुए समिति ने अपने पश्चात्वर्ती प्रतिवेदन में यह सिफारिश की कि मुख्य अवमानकर्ता को भी सह-लेखकों के साथ धिग्दंडित किया जाना चाहिए।[58] तद्नुसार, सभापति द्वारा 24 दिसम्बर, 1980 को सदन की 'बार' में अवमानकर्ताओं को धिग्दंडित किया गया था।[59]

सदस्य अनेक बार सदन या उसकी समितियों की कार्यवाही की कथित रूप से गलत ढंग से रिपोर्ट देने के लिए संबद्ध व्यक्तियों या समाचार-पत्रों के विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचनाएं देते हैं। सभापति मामले के गुणावगुणों के आधार पर उक्त मामले के बारे में अपनी टिप्पणियां/व्यवस्था देने के बाद

उसका निपटान कर देता है या उसकी जांच करने, छान-बीन करने और प्रतिवेदन देने के लिए उसे विशेषाधिकार समिति के पास भेज देता है। कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों का नीचे उल्लेख किया गया है:

समिति के पास भेजा गया पहला मामला ('थॉट' मामला) नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'थॉट' में प्रकाशित विशेष लेख में की गई कतिपय टिप्पणियों से उत्पन्न हुआ। लेख का संगत परिच्छेद यह था : जब एक कांग्रेस सदस्य, श्री एच॰ पी॰ सक्सेना (उत्तर प्रदेश) कुछ रहस्योद्घाटन करते हुए नागाओं के साम्यवादी मित्रों के कुछ कारनामों को प्रकट करने लगे, तो श्री गुप्ता वस्तुत: क्रोधित हो उठे और चीखते हुए (श्री गुप्ता की आवाज इतनी तीक्ष्ण थी कि उसे 'गर्जना' की संज्ञा नहीं दी जा सकती है) यह कहने लगे कि यह 'अविवेकपूर्ण, काल्पनिक और असत्य है।' चूंकि यह सदन की कार्यवाही की ''जानबूझकर, अनुचित ढंग से और मिथ्या रूप में रिपोर्ट करना'' प्रतीत हुआ, अत: सभापति ने इस मामले को समिति के पास भेज दिया जिसने सम्पादक द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण और खेद प्रकट किये जाने पर यह सिफारिश की कि सदन द्वारा इस मामले में आगे कोई कार्यवाही किया जाना आवश्यक नहीं है।[60] सदन एक प्रस्ताव द्वारा इससे सहमत हो गया।[61]

12 अगस्त, 1966 को एक सदस्य ने ''सैबोटेज़ बाइ रेड्स इन दुर्गापुर कन्फर्म्ड'' शीर्षक से ''टाइम्स ऑफ इण्डिया'' में प्रकाशित एक रिपोर्ट की ओर सभापति का ध्यान पूर्वसूचना देकर दिलाया। उक्त रिपोर्ट राज्य सभा की पिछले दिनों की कार्यवाही पर आधारित थी। इसमें यह कहा गया था कि सदन में साम्यवादियों पर लगाये गये आरोपों की सरकार द्वारा पुष्टि नहीं की गई है, अत: वह समाचार-पत्र संसद् में एक दल के विरुद्ध दुर्भावना से पाठकों को जानबूझकर भ्रमित करने का दोषी है। सभापति से इस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास भेजने का अनुरोध किया गया था। तथापि, सभापति ने अन्य सदस्यों के विचारों को सुनने के पश्चात् निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ...मेरे विचार में शीर्षक उचित नहीं है। नि:संदेह, मैं इसे गंभीरता से नहीं लेना चाहता हूं, तो भी मैं 'प्रेस' को केवल यह बताना चाहता हूं कि उनकी इस सदन के प्रति अत्यधिक जिम्मेदारी है और उन्हें शीर्षक देते समय ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिसे पक्षपातपूर्ण या कुछ ऐसा ही समझा जाये।

संबंधित सदस्य द्वारा सूचना को वापिस ले लिया गया था।[62]

29 मार्च, 1967 को पुन: एक सदस्य ने सदन में यह बताया कि ''इंडियन एक्सप्रेस'' ने राज्य सभा की उस दिन की कार्यवाही को दुर्भावनापूर्ण और अनुचित ढंग से प्रकाशित किया है। ''द न्यू फेमिलियर पासटाइम ऑफ बेटिंग जनरल्स कौल एण्ड चौधरी आक्यूपाइज़ हाफ ऑफ द क्वेश्चन आवर इन द राज्य सभा'' वाक्य के बारे में यह तर्क दिया गया था कि इसमें सदन के दोनों पक्षों पर जनरलों को संपीड़ित करने का आरोप लगाया गया है जबकि सच्चाई यह है कि उक्त सूचना प्रश्नों के समय के दौरान प्राप्त की जा रही थी। सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ''हम इस सदन में इसका विशेष ध्यान रखते हैं कि 'प्रेस' से हमारे मतभेद न हों और हम ऐसी अनेक बातों पर अपना ध्यान नहीं देते हैं जिन पर कि अन्यथा ध्यान दिया जा सकता है। लेकिन मेरी राय में यह बिल्कुल अनुचित है और सदन की कार्यवाही का विवरण देते समय 'प्रेस' की भी इस सदन के प्रति कुछ जिम्मेदारी है। सदन की कार्यवाही की सूचना वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए और इसमें सम्मति, सुझावों और आक्षेपों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा, इस सदन को इस मामले पर गंभीर दृष्टिकोण अपनाना होगा।''[63]

एक अन्य समाचार-पत्र (स्टेट्समैन) पर सदन में एक सदस्य द्वारा किये गये भाषण को गलत ढंग से और तोड़-मरोड़ कर प्रकाशित करके विशेषाधिकार का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया था। उक्त लेख को पढ़ने और इस मामले पर विचार करने के उपरान्त उपसभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मेरे विचार में समाचार-पत्रों में विवरण देते समय और अधिक सावधानी बरती जानी चाहिए और जो बात सदस्यों द्वारा नहीं कहीं गई है, उसे इस तरह से नहीं दिया जाना चाहिए जैसेकि वह उनके द्वारा कही गई हो। 'प्रेस' नि:संदेह सदस्यों के भाषणों के बारे में उचित टिप्पणियां कर सकती है। वे चाहे जिस रूप में टिप्पणियां कर सकते हैं, परन्तु उद्धरण देना और यह कहना कि किसी सदस्य विशेष ने यह कहा है, जबकि उसने ऐसा नहीं कहा है, गलत है। मेरे विचार में समाचार-पत्रों को इस संबंध में और अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।[64]

27 मार्च, 1973 को एक सदस्य ने कतिपय ऐसी अभ्युक्तियों के साथ उनका नाम जोड़े जाने के लिए जोकि उन्होंने सदन में नहीं कही थीं, ''मदरलैंड'' के सम्पादक के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहा। सम्पादक ने गलती स्वीकार कर ली, खेद प्रकट किया और उसे अपने समाचार-पत्र में प्रकाशित किया। सभापति ने इस मामले को छोड़ दिया।[65]

इसी तरह से जब एक सदस्य के भाषण का गलत विवरण देने के लिए ''अलाई ओसाई'' नामक एक तमिल दैनिक के विरुद्ध शिकायत की गई, तब उक्त समाचार-पत्र के सम्पादक ने अपना खेद प्रकट किया और इस मामले को छोड़ दिया गया।[66]

एक अन्य मामले में, ''नेशनल हेराल्ड'' में प्रकाशित उद्योग मंत्री के भाषण के संबंध में सदन की कार्यवाही की भ्रामक जानकारी देने के कारण विशेषाधिकार उल्लंघन की शिकायत की गई। उस समाचार में कोका कोला, आई॰बी॰एम॰ को बंद करने और बिड़ला घराने को धमकियां देने के बारे में कुछ कारणों का उल्लेख करके इसके लिए मंत्री को उत्तरदायी ठहराया गया था, जबकि मंत्री द्वारा इस प्रकार के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया था या ऐसी धमकियां नहीं दी गई थीं। उक्त समाचार-पत्र ने इस संबंध में संशोधन प्रकाशित किया और सम्पादक ने इस गलती के लिए खेद प्रकट किया। सभापति ने इन टिप्पणियों के साथ इस मामले को छोड़ दिया, ''...'प्रेस' सदन की कार्यवाही का यथार्थ विवरण देते समय अत्यधिक सावधानी बरतेगी ताकि भविष्य में इस प्रकार से गलत विवरण देने और तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने की स्थिति उत्पन्न न हो।''[67]

एक मामले में, ''असम ट्रिब्यून'' में 9 जून, 1980 को एक सदस्य द्वारा सदन में दिये गये भाषण के सार को प्रकाशित किया गया था। सदस्य ने यह आरोप लगाया कि उक्त समाचार-पत्र में उसके भाषण को गलत ढंग से प्रकाशित किया गया है। सदन को यह सूचित करते हुए कि सम्पादक ने अपनी क्षमा-याचना को प्रकाशित किया है और इस पर अपना खेद प्रकट किया है, सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> मैं यह टिप्पणी करना चाहूंगा कि 'प्रेस' को सदन की कार्यवाही का विवरण देने में सावधानी बरतनी चाहिए... यदि तथ्यों को छिपाने या गलत तथ्यों का उल्लेख करने के प्रयोजन से सम्पादन किया जाता है, तो मैं अपने स्वयं के निर्णयानुसार उचित कार्यवाही करूंगा। मैं यह आशा करता हूं कि भविष्य में गलत विवरण देने या इसी प्रकार की अन्य बातें उत्पन्न नहीं होंगी।[68]

रक्षा मंत्रालय में तत्कालीन राज्य मंत्री, श्री सी॰पी॰एन॰ सिंह के विरुद्ध विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचनाओं के संबंध में सभापति द्वारा 26 मार्च, 1981 को दी गई व्यवस्था को गलत ढंग से और तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने के लिए साप्ताहिक पत्रिका 'ब्लिट्ज' और दिल्ली ब्यूरो के इसके प्रमुख के विरुद्ध अनेक सदस्यों ने 23 अप्रैल, 1981 को विशेषाधिकार उल्लंघन की सूचनाएं दीं। इस मामले की जांच करने, छान-बीन करने और इस पर प्रतिवेदन देने के लिए इसे विशेषाधिकार समिति के पास भेज दिया गया। समिति ने इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के उपरान्त यह पाया कि साप्ताहिक पत्रिका के दिल्ली ब्यूरो के प्रधान ने सभापति की व्यवस्था को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है और व्यवस्था के संबंध में असंयमित भाषा का प्रयोग किया है। समिति ने यह महसूस किया कि उक्त साप्ताहिक पत्रिका ने सभापति की व्यवस्था से अनुचित खिलवाड़ किया है, तथ्यों को गलत ढंग से प्रस्तुत किया है और उन्हें अनभिप्रेत अर्थ दिया है। समिति अपने प्रतिवेदन में इस निष्कर्ष पर पहुंची कि विवादास्पद लेख से सभापति द्वारा उल्लिखित और अभिप्रेत धारणा से विपरीत धारणा और प्रभाव उत्पन्न हुआ है और इस तरह से यह सदन की कार्यवाही को गलत ढंग से निरूपित करने के सदृश्य है। सम्पादक द्वारा खेद प्रकट कर दिये जाने की बात को ध्यान में रखते हुए समिति की सिफारिश के अनुसार इस मामले में कोई कार्यवाही नहीं की गई थी।[69]

सदन को अपनी कार्यवाही विनियमित करने का अधिकार

संसद् के प्रत्येक सदन को अपनी कार्यवाही को उस ढंग से, जैसा वह उचित समझे, संचालित और विनियमित करने का अन्तर्निहित और अनन्य प्राधिकार है। यह अधिकार सदन के अंदर कुछ कहने या करने के संबंध में किसी न्यायालय में कार्यवाही से उन्मुक्ति का ही एक स्वाभाविक हिस्सा है। अब यह सुस्थापित हो चुका है कि प्रत्येक सदन का अपनी आंतरिक कार्यवाही पर अनन्य अधिकार होता है। सदन

की कार्यवाही के संचालन संबंधी मामले में सदन और इसके पीठासीन अधिकारियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्राधिकारी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।[70] तद्नुसार, संविधान के अनुच्छेद 118 के अधीन संसद् के प्रत्येक सदन को अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य-संचालन को विनियमित करने हेतु नियम बनाने के लिए सशक्त किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 122 यह गारन्टी देता है कि संसद् की कार्यवाही की विधिमान्यता को किसी ''प्रक्रिया की अभिकथित अनियमितता'' के लिए किसी न्यायालय में 'प्रश्नगत नहीं' किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था:

> ''अनुच्छेद 118, संसद् के प्रत्येक सदन को अपने प्रक्रिया विषयक नियम बनाने की शक्ति प्रदान करने वाला एक सामान्य उपबंध है। ये नियम सदन के लिए बाध्यकारी नहीं हैं और सदन द्वारा किसी भी समय इनमें परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसे नियम का भंग अनुच्छेद 122 को ध्यान में रखते हुए न्यायिक समीक्षा के अध्यधीन नहीं है।[71]

इस आधार पर कि उक्त कार्यवाहियां प्रक्रिया विषयक नियमों के अनुसार निष्पादित नहीं की गई हैं या सदन ने अनुच्छेद 118 के अधीन सम्यक् रूप से बनाये गये नियमों का पालन नहीं किया है, सदनों की कार्यवाहियों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इन नियमों की व्याख्या भी अनन्य रूप से पीठासीन अधिकारी और अंततः सदन के अधिकार के अन्तर्गत आती है। किन्तु न्यायिक हस्तक्षेप से उन्मुक्ति, ''प्रक्रिया की अवैधता'' से भिन्न केवल ''प्रक्रिया की अभिकथित अनियमितता''[72] के मामलों तक ही सीमित है। अनुच्छेद 122 के खंड (2) में यह उपबंध है कि प्रत्येक सदन का पीठासीन अधिकारी या संसद् का कोई ऐसा अन्य अधिकारी या सदस्य, जिसमें तत्समय, संसद् के सदन की कार्यवाही विनियमित करने, कार्य का संचालन करने या व्यवस्था बनाये रखने की शक्ति निहित है, उन शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालयों की अधिकारिता के अध्यधीन नहीं होगा। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस संबंध में यह अभिनिर्धारित किया था:

> ...यह न्यायालय, किसी भी दृष्टि से, विधान-मंडल के विरुद्ध या अध्यक्ष, जो सर्वोच्च सम्मान का एक पद धारण करता है और जिस पर अनन्य रूप से सदन की प्रतिष्ठा और गरिमा बनाये रखने का दायित्व है, के विनिर्माण के विरुद्ध अपील या पुनरीक्षा हेतु न्यायालय नहीं है।
>
> ...इस न्यायालय के पास, सदन के आन्तरिक मामलों को प्रभावित करने वाले किसी विषय के संबंध में रिट निदेश या आदेश जारी करने का अधिकार नहीं है।[73]

अन्य शब्दों में सदन को, किसी न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, इस बात का निर्णय करने का सामूहिक विशेषाधिकार प्राप्त है कि सदन किस-किस विषय पर और किस क्रम में चर्चा करेगा। पीठासीन अधिकारी को ''किसी प्रश्न पर विशेष चर्चा की अनुमति देने से रोकने वाली या विधान-मंडल के किसी भी सदन की विधायी प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने वाली या किसी भी सदन में चर्चा अथवा विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने वाली कोई रिट आदि किसी भी न्यायालय द्वारा जारी नहीं की जा सकती है।''[74]

दस्तावेजों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना

सदन को अपनी कार्यवाही के संबंध में अनन्य अधिकारिता प्राप्त है, ऐसी अवस्था में उस सदन की कार्यवाही या सदन की समितियों की कार्यवाहियों की बाबत किसी न्यायालय में साक्ष्य देने या उस सदन की कार्यवाही से संबंधित किसी दस्तावेज को प्रस्तुत करने के लिए सदन की अनुमति आवश्यक है। राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति के पहले प्रतिवेदन के अनुसार, ''सदन के किसी भी सदस्य अथवा अधिकारी को सदन की पहले अनुमति प्राप्त किये बिना, सदन की या सदन की किसी समिति की किसी कार्यवाही या ऐसी किसी कार्यवाही से संबंधित या जुड़े हुए या सदन के अधिकारियों की अभिरक्षा में रखे किसी दस्तावेज

की बाबत, किसी न्यायालय में साक्ष्य नहीं देना चाहिये या ऐसे किसी दस्तावेज को न्यायालय में प्रस्तुत नहीं करना चाहिये।''[75]

यदि ऐसे अनुरोध उस समय प्राप्त होते हैं जब सदन सत्राधीन नहीं है, तो न्याय दिलाने में विलम्ब को रोकने के लिए, उपर्युक्त किसी मामले की बाबत न्यायालय के समक्ष साक्ष्य देने या संगत दस्तावेज प्रस्तुत करने हेतु सदन के किसी सदस्य या अधिकारी को अनुमति दिए जाने के लिए सभापति को सशक्त किया गया है। यह बात सदन के समवेत होने के तत्काल पश्चात् सदन के ध्यान में लानी होती है। तथापि, यदि इस मामले में विशेषाधिकार, विशेषकर किसी साक्षी के विशेषाधिकार, का मामला अन्तर्ग्रस्त है या यदि सभापति को ऐसा प्रतीत होता है कि दस्तावेज का प्रस्तुतीकरण स्वयं सदन के विवेकाधिकार का विषय है, तो वह अपेक्षित अनुमति प्रदान करने से इन्कार कर सकता है और ऐसे मामले को जांच और प्रतिवेदन के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंप सकता है।

जब कभी सदन या सदन की किसी कार्यवाही से संबंधित कोई दस्तावेज किसी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित हो तब न्यायालय को दस्तावेज के स्वरूप और जिस तारीख तक यह अपेक्षित है, उसका यथावत उल्लेख करते हुए सदन से अनुरोध करना चाहिये। प्रत्येक मामले में विशेष रूप से इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिये कि क्या दस्तावेज की केवल प्रमाणित प्रति भेजी जाये या न्यायालय के समक्ष यह सभा के किसी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की जाए।

> एक सदस्य की उपस्थिति तथा एक अन्य व्यक्ति को जारी किए गए प्रवेश-पत्र के दिखाने के संबंध में राज्य सभा के एक सुरक्षा अधिकारी को अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, पटियाला हाउस के न्यायालय में 14 फरवरी, 1997 को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए न्यायालय के 'समन' प्राप्त हुए थे। इसके प्रत्युत्तर में अतिरिक्त अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश को इस तथ्य से अवगत कराया गया था कि महासचिव की अभिरक्षा में रखे गए प्रलेख को सभापति/सभा की अनुमति से या तो सचिवालय के अधिकारी द्वारा विधि न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सकता है अथवा न्यायालय से इसके लिए अनुरोध प्राप्त होने पर उसकी प्रमाणित प्रति न्यायालय को दी जा सकती है। किसी भी प्रलेख की मूल प्रति प्रदान नहीं की जाती है। राज्य सभा के सभापति की अनुमति से प्रश्नाधीन प्रवेश-पत्र के अधपन्ने की मूल प्रति 7 जनवरी, 1998 को न्यायालय में प्रस्तुत की गई थी। जब न्यायाधीश ने इस बात पर जोर दिया कि प्रलेख की मूल प्रति को न्यायालय में जमा कर दिया जाए तब सचिवालय के अधिकारी ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह उसके लिए प्राधिकृत नहीं था। तद्नन्तर, न्यायालय को पत्र द्वारा इस संबंध में स्थिति से अवगत कराया गया तथा इस संबंध में सुस्थापित संसदीय परिपाटियों के अनुरूप न्यायालय में प्रवेश-पत्र के अधपन्ने की प्रमाणित प्रति को जमा करा दिया गया।[76]

उसी तरह जब सदन के किसी अधिकारी का मौखिक साक्ष्य अपेक्षित हो तब मामले का और जिस तारीख को उसका साक्ष्य अपेक्षित है उसका यथावत उल्लेख करते हुए न्यायालय को सभा से अनुरोध करना चाहिये। उसका साक्ष्य लेने का उद्देश्य भी स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिये। जब न्यायालय को सदन की अभिरक्षा में रखे किसी दस्तावेज का प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित होता है या सदन के किसी अधिकारी का मौखिक साक्ष्य अपेक्षित होता है तब न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने के लिए विधि मंत्रालय के परामर्श से गृह मंत्रालय द्वारा एक उपयुक्त प्रपत्र तैयार किया गया है।

जब सत्रावधि के दौरान न्यायालय से ऐसा कोई अनुरोध प्राप्त हो तब वह मामला सभापति द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाये। समिति से कोई प्रतिवेदन प्राप्त होने पर समिति के अध्यक्ष या इसके किसी सदस्य द्वारा सदन में इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाये कि सदन प्रतिवेदन से सहमत है, और सदन के निर्णय के अनुसार आगे कार्यवाही की जानी चाहिये।[77]

''1956-57 के दौरान राज्य सभा में स्वचालित मत अभिलेखन प्रणाली के प्रतिष्ठापन के बारे में इण्डो-जर्मन ट्रेड सेंटर, कलकत्ता के साथ किए गये पत्राचार की फाइल को किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा'' अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किए जाने हेतु राज्य सभा के सचिव द्वारा अप्रैल, 1958 में प्राप्त किए गये अनुरोध के संदर्भ में समिति द्वारा उपर्युक्त प्रक्रिया निर्धारित की गई थी। जिस उपर्युक्त फर्म ने उक्त प्रणाली के प्रतिष्ठापन हेतु सरकार के साथ एक संविदा की थी उसके साथ लोक सभा सदस्य श्री वीरेन राय का संबंध होने के कारण उसकी अनर्हता संबंधी मामला अधिकरण के समक्ष था। समिति ने सिफारिश की थी कि पत्राचार अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाये। सदन ने 2 मई, 1958 को समिति का प्रतिवेदन स्वीकार किया था।[78]

सदस्यों की उपस्थिति से संबंधित सभी अभिलेख महासचिव की अभिरक्षा में होते हैं और इनकी आपूर्ति किसी न्यायालय को ही, यदि सदन सत्राधीन है तो उसकी अनुमति से अथवा यदि सदन सत्राधीन नहीं है तो सभापति की अनुमति से, की जा सकती है।

राज्य सभा सदस्य श्री आर॰ गोपालकृष्णन की उपस्थिति और हाजिरी को दर्शाते हुए राज्य सभा में 1 मार्च , 1963 से 15 मार्च, 1963 तक के हाजिरी रजिस्टर के प्रमाणित उद्धरणों के लिए सेशन न्यायाधीश, कुड्डालौर से एक अनुरोध प्राप्त हुआ था। चूंकि जिस समय उक्त अनुरोध प्राप्त हुआ था उस समय सदन सत्राधीन नहीं था इसलिए सभापति ने सत्र न्यायाधीश को हाजिरी रजिस्टर के संगत उद्धरणों की सम्यक् प्रमाणित प्रति भेजने की अनुमति दी थी। उद्धरण 30 जनवरी, 1964 को भेजे गये थे और उपसभापति ने तद्नुसार सदन को सूचित किया था।[79]

जहां तक सदन के मुद्रित/प्रकाशित वाद-विवादों को किसी न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने या भेजे जाने का संबंध है, यह विचार अपनाया गया कि इस प्रयोजन के लिए सदन की अनुमति अपेक्षित नहीं है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 78 के अधीन विधान-मंडलों की कार्यवाही, सरकार के आदेश से मुद्रित कार्यवाही की प्रतियों द्वारा साबित की जा सकती है। सदन की अनुमति प्राप्त करने का प्रश्न केवल तभी पैदा होगा जब न्यायालय को सदन की कार्यवाही से संबंधित किसी सदस्य या अधिकारी की सहायता की आवश्यकता हो या सदन के महासचिव की अभिरक्षा में रखे दस्तावेजों को प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता हो।[80]

इस संबंध में यह भी कहा जा सकता है कि यदि 'हाउस ऑफ कॉमन्स' की कार्यवाही से संबंधित साक्ष्य या अन्य दस्तावेजों को प्रस्तुत किए जाने का मामला नहीं है तो न्यायालयों में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के प्रतिवेदनों और वाद-विवादों का हवाला देने हेतु अनुमति के लिए किसी याचिका की आवश्यकता नहीं है।[81]

ऐसे बहुत-से अवसर आये हैं जब विभिन्न मामलों के संबंध में संवीक्षा के लिए जांच एजेंसियों (पुलिस/केन्द्रीय जांच ब्यूरो) द्वारा अभिलेखों की मांग की गई है। उन सभी मामलों में उन्हें अभिलेख दिखाए गये और अभिलेखों की प्रतियां इस शर्त के साथ उन्हें उपलब्ध कराई गईं कि इस प्रयोजनार्थ सभापति की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना न्यायालय के समक्ष उनका उपयोग नहीं किया जायेगा या उन्हें प्रस्तुत नहीं किया जायेगा।[82]

गिरफ्तारी से स्वतंत्रता

कोई भी संसद्-सदस्य, सदन के सत्र के चलते रहने के दौरान या ऐसी किसी समिति, जिसका वह सदस्य हो, की बैठकों के दौरान और ऐसे सत्र/बैठक से पूर्व और पश्चात् के चालीस दिनों के दौरान किसी सिविल प्रक्रिया के अधीन गिरफ्तार या कारागार में निरुद्ध किए जाने के दायित्व के अधीन नहीं है।[83]

संसद्-सदस्यों को गिरफ्तारी से स्वतंत्रता प्रदान किए जाने की आवश्यकता इस तथ्य में निहित है कि प्रत्येक विधान-मंडल को अपने सदस्यों की सेवाओं पर सबसे पहले दावा करने का हक है और वह व्यक्ति

या प्राधिकारी, जो किसी सदस्य को उसके संसदीय कर्त्तव्यों के पालन से रोकता है या बाधित करता है, विशेषाधिकार भंग और सदन के अवमान का दोषी है।

दांडिक अपराधों या निवारक निरोध विधियों के अधीन गिरफ्तारी

तथापि, गिरफ्तारी से स्वतंत्रता के विशेषाधिकार का आशय दांडिक न्याय के या निवारक निरोध जैसे आपात विधान से संबंधित विधियों के प्रशासन में हस्तक्षेप करना नहीं है। अत: यह उन्मुक्ति केवल सिविल मामलों तक ही सीमित की गई है। मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां किसी संसद्-सदस्य पर अभ्यारोपणीय अपराध का आरोप हो वहां गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का विशेषाधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता है या उसके लागू होने का दावा नहीं किया जा सकता है।[84] अत: जहां किसी सदस्य पर कोई दांडिक या अभ्यारोपणीय अपराध का आरोप लगाया गया हो वहां मुख्यत: इस आधार पर कि सदन को दांडिक विधि की प्रक्रिया से किसी सदस्य को संरक्षण प्रदान नहीं करना चाहिये, गिरफ्तारी से स्वतंत्रता का विशेषाधिकार लागू नहीं रहता है। अत: वह राज्य को यह निदेश देते हुए कि उसे विधान-मंडल के सत्र में भाग लेने के लिए समर्थ बनाया जाये, किसी परमादेश रिट की प्रार्थना नहीं कर सकता है। वस्तुत: ऐसा विशेषाधिकार या उन्मुक्ति प्रदान करने का कोई कानूनी उपबंध नहीं है।[85]

कलकत्ता उच्च न्यायालय के अनुसार, निवारक निरोध सिविल स्वरूप के होने की अपेक्षा आपराधिक स्वरूप के अधिक होते हैं। ये केवल ऐसे व्यक्तियों को निरुद्ध किए जाने की अनुमति देते हैं जो राज्य के लिए खतरनाक हैं या जिनके खतरनाक होने की संभावना है। यह सत्य है कि ऐसे आदेश तब दिए जाते हैं जब दांडिक आरोप साबित होने की संभावना तो होती नहीं है किन्तु आदेश जघन्य और दांडिक या देशद्रोहात्मक क्रियाकलापों में लिप्त होने के संदेह पर आधारित होते हैं।[86]

निरुद्ध सदस्य का सत्र में उपस्थित होने का अधिकार

यदि किसी सदस्य को निवारक निरोध अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार किया जाता है और उसे वास्तविक विचारण के बिना भी वैध तरीके से निरुद्ध किया जाता है, तो वह यह दावा नहीं कर सकता है कि संसद्-सत्र में उपस्थित होने के उसके अधिकार को उसके निरोध से वरीयता प्रदान की जानी चाहिए। जहां तक निरुद्ध किये जाने के वैध आदेश का संबंध है, संसद्-सदस्य सामान्य नागरिक की अपेक्षा किसी विशेष दर्जे का दावा नहीं कर सकते हैं और उन्हें किसी अन्य नागरिक की भांति ही इसके अधीन गिरफ्तार किया जा सकता है और निरुद्ध किया जा सकता है।[87]

इस सन्दर्भ में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

> बहस में भाग लेने और अपना मत देने के लिए संसद्-सत्र में उपस्थित होने के किसी संसद्-सदस्य के अधिकार सही अर्थ में संवैधानिक अधिकार नहीं हैं और स्पष्टत: वे मौलिक अधिकार तो बिल्कुल नहीं हैं। जहां तक निरुद्ध किये जाने के वैध आदेश का संबंध है, कोई सदस्य किसी साधारण नागरिक की अपेक्षा किसी विशेष दर्जे का दावा नहीं कर सकता है।[88]

आपात विधान के अंतर्गत या आपराधिक आरोपों पर निरुद्ध किये गये किसी सदस्य द्वारा इस आधार पर उन्मुक्ति का दावा नहीं किया जा सकता है कि उसे सत्र में उपस्थित होना है, भले ही उसे इस आशय का आमंत्रण प्राप्त हुआ हो। इस तरह से निरुद्ध किये गये सदस्यों से सदन की बैठकों में उपस्थित होने के लिए प्राप्त होने वाले अनुरोधों को सामान्यत: सभापति द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है। यदि किसी सदस्य को

निवारक निरोध संबंधी किसी कानून के अंतर्गत या दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है और निरुद्ध किया गया है, तो सभापति सदन की बैठकों में उपस्थित होने के लिए उसे अनुमति प्रदान करने हेतु सरकार को विवश नहीं कर सकते हैं अथवा निदेश नहीं दे सकते हैं।[89] तथापि, सदस्य इसके लिए सक्षम प्राधिकारी से अनुरोध कर सकता है जो उसे सदन के सत्र में उपस्थित होने और पुन: कारागार में चले आने की अनुमति प्रदान कर सकता है।

दो मामलों में राज्य सभा के सदस्यों को पुलिस के पहरे में सत्र में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान की गई थी।

> राज्य सभा के सदस्य, श्री राज नारायण को, जिन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107/117 के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था, उच्चतम न्यायालय द्वारा पुलिस पहरे में सदन की कार्यवाही में भाग लेने के लिए अनुमति प्रदान की गई थी। तद्नुसार वह 4 और 5 सितम्बर, 1970 को सदन में उपस्थित हुए और उन्होंने प्रिवी पर्सेज समाप्त करने से संबंधित संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1970 पर हुई बहस में भाग लिया।[90]
>
> राज्य सभा की सदस्या कुमारी सरोज खापर्डे को न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी नागपुर द्वारा पुलिस पहरे में सत्र में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान की गई थी। इस मामले में प्राप्त हुई सूचना के अनुसार उन्हें इस प्रयोजनार्थ नागपुर से दिल्ली लाया गया था। तद्नुसार, कुमारी खापर्डे सदन में उपस्थित हुईं।[91]
>
> एक बार जब सभापति ने राज्य सभा के एक सदस्य को ''दिल्ली में अपने कतिपय पारिवारिक मामले निपटाने हेतु'' एक माह के अस्थायी पैरोल पर रिहा किये जाने के संबंध में मद्रास सरकार से प्राप्त हुई सूचना के बारे में सदन को सूचित किया, तब एक सदस्य ने सभापति से उस सदस्य को सदन में उपस्थित होने की अनुमति प्रदान करने का अनुरोध किया। सभापति ने यह कहते हुए उक्त अनुरोध को अस्वीकृत कर दिया कि ''यदि किसी कानून के अन्तर्गत उन्हें रिहा किया जा सकता है तो उन्हें इसकी जानकारी नहीं है।'' सदन के नेता ने यह कहा : ''यदि कानून उन्हें इसकी अनुमति देता है, तो उनके मार्ग में कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी।''[92]
>
> निरुद्ध किये गये सदस्यों के लिए सदन से अनुपस्थिति की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।[93]

न्यायालय में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट

किसी न्यायालय में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से छूट का विशेषाधिकार किसी सिविल मामले में गिरफ्तारी से स्वातंत्र्य के विशेषाधिकार के सदृश है और इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सदन में सदस्य की उपस्थिति अन्य सभी दायित्वों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है और सदन का अपने सदस्यों की उपस्थिति और सेवा पर सर्वोपरि अधिकार होता है और उसका इस पर पहला दावा होता है।

> 1 मई, 1974 को सभापति को राष्ट्रपति के निर्वाचन के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत विशेष संदर्भ के मामले में उच्चतम न्यायालय से एक सूचना प्राप्त हुई। उक्त सूचना में सभापति से यह अपेक्षा की गई थी कि वह किसी अधिवक्ता के माध्यम से न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों और न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में इस तरह से भाग लें, जैसाकि वह उचित समझें। सामान्य प्रयोजन समिति ने, जिसके समक्ष इस मामले को रखा गया था, यह परामर्श दिया कि सभापति द्वारा उक्त सूचना के संबंध में कोई कार्यवाही किये जाने की आवश्यकता नहीं है। सदन ने उक्त निर्णय से अपनी सहमति प्रकट की।[94]

सदन की प्रसीमा में विधिक प्रक्रिया की तामील और गिरफ्तारी से उन्मुक्ति

सदन की प्रसीमा में सभापति की अनुमति प्राप्त किये बिना न तो कोई गिरफ्तारी ही की जा सकती है और न ही किसी सिविल या आपराधिक विधिक प्रक्रिया की तामील की जा सकती है और इस प्रकार की

अनुमति प्राप्त किया जाना अनिवार्य होता है, चाहे सदन का सत्र चल रहा हो या नहीं। सदन की प्रसीमा को नियम में परिभाषित किया गया है।[95]

भारत सरकार (गृह मंत्रालय) ने सम्बद्ध प्राधिकारियों को इस आशय के निर्देश जारी किये हैं कि न्यायालयों को सभापति या सचिवालय के माध्यम से संसद्-सदस्यों के संबंध में किसी सिविल या आपराधिक विधिक प्रक्रिया की तामील नहीं करनी चाहिए। ऐसी प्रक्रिया की तामील संसद् की प्रसीमा के बाहर अर्थात् किसी सदस्य के आवास पर या किसी अन्य स्थान पर संबंधित सदस्यों के बारे में सीधे ही की जानी चाहिए।[96] इस आशय के निर्देश भी दिये गये हैं कि ऐसे अत्यावश्यक मामलों के अतिरिक्त जिनमें सभा के उस दिन स्थगित होने तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती है, सदन की प्रसीमा में गिरफ्तारियां करने के लिए अनुमति प्राप्त करने हेतु संबंधित प्राधिकारियों द्वारा नैत्यिक तौर पर अनुरोध नहीं किये जाने चाहिएं। प्रत्येक मामले में ऐसे अनुरोध पर कम से कम पुलिस उप-महानिरीक्षक स्तर के अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिएं और सदन की प्रसीमा में गिरफ्तारी की आवश्यकता के कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए।[97]

सचिवालय को जब कभी राज्य सभा के किसी सदस्य के संबंध में किसी न्यायालय या किसी आयोग से तामील के लिए कोई समन, सूचना या अन्य कोई प्रक्रिया विषयक सूचना प्राप्त होती है, तब उसे उक्त सूचना को जारी करने वाले प्राधिकारी के पास लौटा दिया जाता है और सचिवालय के माध्यम से प्रक्रियाओं की तामील न करने की परम्परा की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया जाता है।[98]

सदस्यों की गिरफ्तारी आदि की सूचना

किसी सदस्य को किसी आपराधिक आरोप पर या किसी अपराध के लिए गिरफ्तार किये जाने या किसी न्यायालय द्वारा कारावास का दंड दिये जाने या किसी कार्यकारी आदेश के अन्तर्गत निरुद्ध किये जाने पर सुपुर्दगी न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या कार्यकारी प्राधिकारी को यथास्थिति अविलम्ब इसकी सूचना सभापति को देनी होती है और उसे सदस्य को निरुद्ध किये जाने या कारागार में रखे जाने के स्थान सहित उसे गिरफ्तार, निरुद्ध या दोष-सिद्ध ठहराये जाने के यथास्थिति कारणों का निर्धारित-प्रपत्र में उल्लेख करना होता है।[99] किसी सदस्य की गिरफ्तारी और दोष-सिद्धि के उपरांत अपील के विनिर्णयन तक या अन्यथा जमानत पर रिहा किये जाने पर सम्बद्ध प्राधिकारी द्वारा निर्धारित-प्रपत्र में इस तथ्य की भी सूचना सभापति को देनी होती है।[100] सदस्यों की सूचनार्थ इस प्रकार से प्राप्त होने वाली जानकारी की सूचना, यदि सदन का सत्र चल रहा हो तो सभापति द्वारा सदन को दी जाती है और यदि सदन का सत्र नहीं चल रहा हो, तो उसे संसदीय समाचार में प्रकाशित किया जाता है।[101] तथापि, यदि किसी सदस्य की चाहे जमानत या अपील करने पर उसके उन्मोचन पर रिहाई की सूचना सदन को उसकी गिरफ्तारी की सूचना से पहले प्राप्त हो जाती है, तो सदन को गिरफ्तारी या उसके बाद उसकी रिहाई या उन्मोचन की सूचना देना आवश्यक नहीं है।[102] इसी तरह, यदि कोई सदस्य सदन को उसकी रिहाई की सूचना प्राप्त होने से पूर्व ही सदन में उपस्थित होने लगता है, तो उस सूचना को सदन में पढ़कर नहीं सुनाया जाता है, अपितु उसे सदस्यों की सूचनार्थ संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दिया जाता है।[103]

पुलिस द्वारा मद्रास में एक सदस्य को गिरफ्तार करने और उसे निरुद्ध किये जाने के बारे में सम्बद्ध प्राधिकारियों द्वारा सूचना न भेजने के आरोप पर विशेषाधिकार उल्लंघन की शिकायत की जांच करते समय विशेषाधिकार समिति ने यह टिप्पणी की कि किसी सदस्य के कहीं आने-जाने पर प्रतिबंध लगाये जाने संबंधी तथ्य, जैसे (सदस्य को किसी औपचारिक अभिरक्षा में लिये बिना) उसे किसी स्थान विशेष से

हटाया जाना, सदन को सूचनार्थ तुरन्त बताया जाना चाहिए, चाहे इस प्रकार का प्रतिबंध विधिक अर्थों में गिरफ्तारी या निरोध हो या नहीं।[104]

औपचारिक रूप से गिरफ्तार किये बिना संसद्-सदस्यों के एक शिष्टमंडल को दंगा-प्रभावित क्षेत्र में जाने से रोकने और पन्द्रह घंटे तक प्रतीक्षारत रखने के एक मामले में विशेषाधिकार समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित टिप्पणी की:

> ...यदि सम्बद्ध प्राधिकारियों ने अत्यधिक सावधानी बरतते हुए शिष्टमंडल को जिन परिस्थितियों में दंगा-प्रभावित क्षेत्रों में जाने से रोका गया था, उनके बारे में तथ्यात्मक सूचना भेज दी होती, तो यह बेहतर होता।[105]

राज्य सभा में अनेक बार सदस्यों ने असद्भाव से अपनी गिरफ्तारी किये जाने या सदस्यों को सदन में उपस्थित होने से रोकने या सदस्यों की गिरफ्तारी की अनुपयुक्त जानकारी देने की शिकायतें की हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों का यहां नीचे उल्लेख किया गया है:

(1) *असद्भावपूर्वक गिरफ्तारी*

एक शिकायत में एक सदस्य ने यह आरोप लगाया कि उन्हें एक ऐसे वारंट के आधार पर गिरफ्तार किया गया था जिसकी प्रविष्टियों में हेर-फेर की गयी थी और जिस पर मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर और न्यायालय की मोहर नहीं थी। प्रथम-दृष्टया उक्त वारंट के संदेहास्पद प्रलेख प्रतीत होने पर सभापति ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास भेज दिया। समिति ने मामले की पूर्ण जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि वारंट में किये गये परिवर्तनों के लिए प्रति-हस्ताक्षर किये जाने चाहिए थे। तथापि, गिरफ्तारी न तो अवैध थी और न ही असद्भावपूर्वक।[106]

(2) *गिरफ्तारी और उसके परिणामस्वरूप सदस्य को सदन में उपस्थित होने से रोका जाना*

23 दिसम्बर, 1969 को गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने पिछले दिन संसद् भवन के बाहर एक प्रदर्शन के संबंध में कतिपय संसद्-सदस्यों की गिरफ्तारी के बारे में एक वक्तव्य दिया। एक सदस्य ने यह आरोप लगाया कि गिरफ्तारी के कारण सदस्य उस दिन सदन में उपस्थित नहीं हो सके। उपसभापति ने सामान्य परिस्थितियों में की जाने वाली गिरफ्तारी और असामान्य परिस्थितियों में की जाने वाली गिरफ्तारी में अन्तर करते हुए विशेषाधिकार के प्रश्न को अस्वीकृत कर दिया और यह कहा कि गिरफ्तारी की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखना होता है।[107]

(3) *गलत सूचना देना*

सदस्य की गिरफ्तारी आदि के संबंध में संसदीय समाचार के माध्यम से संसूचित सूचना के आधार पर संबंधित सदस्य ने सदन में बताया कि वह संसदीय समाचार में दिए गये स्थान और समय पर कभी गिरफ्तार नहीं हुआ था और न ही उसमें उल्लिखित समय पर रिहा हुआ था। इस कथन के पश्चात् सदस्य ने विशेषाधिकार भंग की सूचना दी। यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया। इस मामले की जांच करने के पश्चात् समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि गलत सूचना दी गई थी। तथापि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस अधिकारियों की ओर से सद्भाव की कमी नहीं थी और न जानबूझकर सदन को गुमराह करने का कोई प्रयत्न किया गया था, समिति ने संबंधित पुलिस अधिकारियों द्वारा उसके समक्ष व्यक्त किए गये खेद और क्षमा-याचना को स्वीकार कर लिया। समिति ने यह भी टिप्पणी की : जिस लापरवाही और असावधानीपूर्ण रीति से सभापति को सूचना दी गई है वह बहुत असन्तोषजनक है। राज्य सभा की सूचनार्थ सभापति को संबोधित संदेश की मर्यादा की पूर्णत: अवहेलना करते हुए यह संदेश भेजा गया है।[108]

(4) *सूचना भेजने में विलम्ब*

एक सदस्य को 1 मार्च, 1981 को गिरफ्तार किया गया और बाद में रिहा कर दिया गया। सभापति को दिनांक 3 मार्च, 1981 का बेतार संदेश 4 मार्च, 1981 को प्राप्त हुआ, जो उसी दिन संसदीय समाचार में प्रकाशित कर दिया गया। दिनांक 5 मार्च, 1981 को, अनेक सदस्यों ने, उक्त सदस्य की गिरफ्तारी और रिहाई की सूचना भेजने में हुए विलम्ब का मामला सदन में उठाया। इसके पश्चात् उस सदस्य ने विशेषाधिकार भंग की सूचना दी जो सभापति द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंप दी गई। समिति ने नोट किया कि इसमें दो दिन का विलम्ब हुआ था और परिणामस्वरूप, पुलिस अधिकारियों की ओर से चूक हुई थी। समिति को सूचित किया गया कि राज्य सरकार ने इस पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की है/संबंधित अधिकारियों की परिनिन्दा की है। अत: समिति ने यह सिफारिश की कि इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[109]

अभिरक्षाधीन किसी सदस्य के पत्र-व्यवहार को रोका जाना

गिरफ्तार या निरुद्ध किए गये किसी सदस्य के ऐसे पत्र-व्यवहार, जो राज्य सभा के सभापति या महासचिव या किसी संसदीय समिति के अध्यक्ष को संबोधित हो, को रोकना विशेषाधिकार भंग का मामला बनता है। अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि निरुद्ध किया गया व्यक्ति जब तक सदन का सदस्य रहता है तब तक वह राज्य सभा के सभापति अथवा किसी समिति के अध्यक्ष के साथ पत्र-व्यवहार करने और अभ्यावेदन देने के अधिकार का हकदार है। कार्यपालिका के किसी भी प्राधिकारी को ऐसे पत्र-व्यवहार को रोकने का कोई अधिकार नहीं है। यह अधिकार न केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की वजह से मिलता है बल्कि एक सदस्य के रूप में संविधान द्वारा गारंटीकृत उसे प्राप्त कतिपय शक्तियों और विशेषाधिकारों से भी प्राप्त होता है।[110]

पुलिस/जेल प्राधिकारियों द्वारा सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार किया जाना

सदस्यों ने विधि प्रवर्तन एजेंसियों या जेल प्राधिकारियों द्वारा अभिकथित रूप से किए गये कदाचार अथवा दुर्व्यवहार के कारण अनेक बार विशेषाधिकार भंग की सूचनाएं दी हैं उनमें से कुछ मामले नीचे दिए गये हैं:

एक बार सदस्यों ने उस रीति, जिस रीति से एक सदस्य को गिरफ्तार किया गया था और जेल में उसके साथ जो व्यवहार किया गया था, के बारे में मामला उठाने का प्रयत्न किया था। इस पर उपसभापति ने यह टिप्पणी की थी कि यदि किसी सदस्य को गिरफ्तार किया जाता है तो यह आवश्यक और अनिवार्य है कि उसे समुचित चिकित्सीय देख-रेख और परिचर्या प्रदान की जाये।[111]

जेल में एक सदस्य के साथ किए गए दुर्व्यवहार संबंधी उसकी शिकायत को विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था, किन्तु संबंधित सदस्य की ओर से राज्य सरकार के कथन का खंडन करते हुए कोई उत्तर न मिलने पर समिति ने महसूस किया कि इस मामले को आगे बढ़ाने से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।[112]

दिनांक 9 मार्च, 1989 को एक सदस्य ने उसकी गिरफ्तारी के दौरान उसके साथ किए गये दुर्व्यवहार के बारे में सदन में एक विशेष उल्लेख किया था, जिसके संबंध में गृह मंत्री ने सदन में उठाये गये मामले के उत्तर में एक वक्तव्य दिया था। सभापति ने यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया था। गृह मंत्रालय की संसूचना के अनुसार, संबंधित अधिकारी को भविष्य में सावधानी बरतने की चेतावनी दिये जाने की बात ध्यान में रखते हुए समिति ने सिफारिश की थी कि इस मामले में आगे कार्यवाही किए जाने की आवश्यकता नहीं है।[113]

एक महिला सदस्य के साथ दुर्व्यवहार की घटना का मामला, 23 मई, 1990 को सदन में उठाये जाने पर, सदन द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था, जिसके बारे में समिति ने यह महसूस किया था कि उपसभापति (समिति के अध्यक्ष) के समक्ष संबंधित पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए, इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[114]

एक घटना में, राज्य सभा के एक सदस्य ने यह शिकायत की थी कि जब वह संसदीय सौध से बाहर निकल रहा था और सदन की बैठक में भाग लेने के लिए संसद् भवन की ओर जा रहा था, तब एक कांस्टेबल उसकी तरफ दौड़ा आया और उसका दाहिना बाजू पकड़ लिया और सब चीज ठीक-ठाक होने तक, वस्तुत: उसे बलात् एक कोने में खड़ा रखा। सदस्य द्वारा अपना परिचय दिए जाने के बावजूद ऐसा हुआ। सभापति ने यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति को बताया गया कि कांस्टेबल को निलम्बित कर दिया गया है और उसके विरुद्ध विभागीय जांच के भी आदेश दे दिए गये हैं। सदस्य के साथ पुलिसमैन द्वारा किए गये कदाचार के लिए स्वयं पुलिस उपायुक्त ने भी स्वत: क्षमा-याचना की थी। अत: समिति ने यह सिफारिश की कि मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[115]

पुलिस अधिकारियों द्वारा एक सदस्य के साथ किए गए दुर्व्यवहार के एक और मामले में विशेषाधिकार समिति, जिसे यह मामला सौंपा गया था, ने यह टिप्पणी की थी कि सदस्य के साथ शालीनता और गरिमापूर्ण व्यवहार नहीं किया गया था जिसका कि वह एक संसद्-सदस्य होने के नाते पात्र था। तथापि, भविष्य में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए राज्य सरकार द्वारा उठाये गये कदमों और सभी संबंधित व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किए गये खेद और स्वत: की गई क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए समिति ने यह सिफारिश की थी कि इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है।[116]

इस आरोप के एक मामले में, कि अधिकारियों ने गाली-गलौज की भाषा का प्रयोग करते हुए एक सदस्य का अनादर और अपमान किया था, विशेषाधिकार समिति, जिसको कि यह मामला सभापति द्वारा सौंपा गया था, ने यह सिफारिश की थी कि सभी संबंधित व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किए गये खेद और स्वत: की गई क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए इस मामले को आगे बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, समिति ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि संबंधित राज्य सरकार को संसद्-सदस्यों के साथ शासकीय स्तर पर वार्तालाप के तौर-तरीकों की बाबत केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किए गये अनुदेशों का सम्यक् अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए।[117]

किसी अभिरक्षाधीन सदस्य के साथ किए गये दुर्व्यवहार के मामले पर विचार करते हुए विशेषाधिकार समिति ने यह टिप्पणी की थी कि ''संसद्-सदस्य, लोक सेवकों द्वारा अत्यधिक सम्मान प्रदान किए जाने के पात्र हैं।'' समिति ने आगे यह कहा था :

पुलिस या किसी अन्य प्राधिकारी को ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए या ऐसी रीति से कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे सार्वजनिक व्यक्तियों के रूप में कार्य करते हुए संसद्-सदस्यों को कोई बाधा पहुंचे। संसद्-सदस्यों के साथ व्यवहार करते समय, संबंधित प्राधिकारियों को अत्यधिक संयम और सावधानी से कार्य करना चाहिए और पूर्ण शालीनता व्यक्त करनी चाहिए जिसके कि जन-प्रतिनिधि विधिसम्मत पात्र हैं। पुलिस को अत्यधिक समझ-बूझ और सहिष्णुता से काम लेना चाहिये और उसे अल्पावधि के लिए भी किसी नागरिक, विशेषकर संसद्-सदस्यों की वैयक्तिक स्वतंत्रता पर उससे अधिक पांबदी नहीं लगानी चाहिए जितनी कि किसी विशेष परिस्थिति से निपटने के लिए समुचित रूप से आवश्यक है।[118]

एक बार विशेषाधिकार समिति ने संसद् भवन या दिल्ली में अन्यत्र पुलिसकर्मियों द्वारा रुकावटें उत्पन्न करने/बुरी तरह पेश आने/दुर्व्यवहार करने के बारे में सदस्यों की अनेक शिकायतों पर जिन्हें इस समिति के पास भेजा गया था, विचार किया और पुलिस द्वारा संसद्-सदस्यों के साथ किये गये व्यवहार पर अपना क्षोभ और चिन्ता व्यक्त की और सुस्पष्टत: यह महसूस किया कि संसद् में जन-प्रतिनिधि होने के कारण कानून को लागू करने वाले प्राधिकारियों को उनके साथ अत्यधिक शालीनता और सावधानी से व्यवहार करना चाहिए क्योंकि संसद्-सदस्यों के प्रति दर्शाये गये अनादर-भाव या अशिष्टता से सदस्यों के वैयक्तिक अनादर और परेशानी के साथ-साथ संसद् की गरिमा पर भी आंच आती है। बाद में, समिति के अनुरोध पर गृह मंत्री ने अनौपचारिक रूप से समिति से भेंट की और ऐसी घटनाओं, जिनमें संसद्-सदस्य अन्तर्ग्रस्त हों, की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए उचित कदम उठाने का आश्वासन दिया। समिति ने यह सिफारिश की कि सरकार को इस प्रकार की शिकायतों को दूर करने के लिए सदस्यों की गरिमा के अनुरूप (1) प्रशासन और विधायकों और (2) पुलिस और विधायकों के मध्य संव्यवहार के लिए विस्तृत मार्ग-निर्देश तैयार करने चाहिएं। समिति ने यह आशा व्यक्त की कि अभद्र आचरण करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध, चाहे वे प्रशासन में हों या पुलिस में, ऐसे आचरण के लिए सरकार द्वारा कड़ी कार्यवाही की जायेगी और यदि उचित मार्ग-निर्देशों को वास्तव में क्रियान्वित किया जाता है, तो इससे भविष्य में इस प्रकार की शिकायतों को कम करने में मदद मिलेगी।[119]

सदस्यों को हथकड़ी लगाया जाना

किसी आपराधिक आरोप पर गिरफ्तार किये गये किसी सदस्य के लिए हथकड़ी का प्रयोग किया जाना विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं है।

> बड़ौदा डायनामाइट मुकदमे में एक अन्य सदस्य को न्यायालय ले जाते समय हथकड़ी लगाये जाने के बारे में एक सदस्य ने विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की सूचना दी। उपसभापति ने यह व्यवस्था दी कि यह विशेषाधिकार का मामला नहीं है।[120]

> एक अन्य अवसर पर राज्य सभा के एक सदस्य को दांडिक विधि के अंतर्गत गिरफ्तार कर जेल में बंद कर दिया गया था। उन्हें हथकड़ी लगाकर न्यायालय ले जाया गया। उनके इस तर्क को सभापति द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया कि हथकड़ी लगाना संसद्-सदस्य के विशेषाधिकार का उल्लंघन है।[121]

गृह मंत्रालय ने गिरफ्तार किये गये संसद्-सदस्यों को हथकड़ी लगाये जाने के संबंध में निर्देश जारी किये हैं। इन निर्देशों के अनुसार संसद् और राज्य विधान-मंडलों के सदस्यों, सार्वजनिक जीवन में उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों जैसे बंदियों को सामान्यतया हथकड़ी लगाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए और केवल ऐसे मामलों में ही हथकड़ी का उपयोग किया जाना चाहिए जिनमें कि यह विश्वास करने के पर्याप्त आधार हों कि वह हिंसा पर उतारू हो सकता है या भागने का प्रयास कर सकता है।[122]

सदस्यों पर लांछन लगाया जाना

यह सुस्थापित है कि सदन की कार्यवाही या उसके किसी सदस्य की सदन में सेवाओं के लिए या उनके संबंध में लांछन लगाते हुए भाषण देना और लेख लिखना या निरादरपूर्ण लेख प्रकाशित करना सदन के अधिकारों और विशेषाधिकारों का उल्लंघन है। यह भी निर्णय किया गया है कि किसी सदस्य के चरित्र या सदस्य की हैसियत से उसके व्यवहार पर लांछन लगाने वाले लिखित लांछन निर्णयन विधि (कॉमन लॉ) के अन्तर्गत अपमान लेख न होते हुए भी विशेषाधिकार का उल्लंघन है। तथापि, यह निर्णय करना सदन का कार्य है कि क्या कोई विशेष प्रकाशन सदन या इसके सदस्यों, सदस्य की हैसियत से उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है और संसद् का अवमान है।[123]

> **राम गोपाल गुप्ता के मामले में** विशेषाधिकार समिति ने यह निर्णय दिया कि कानपुर के एक व्यापारी द्वारा परिचालित किये गये पत्र में अन्तर्विष्ट कतिपय परिच्छेदों में सदस्यों पर सदन में कतिपय प्रश्न पूछने के आरोप लगाये गये थे और इसलिए इसे विशेषाधिकार के उल्लंघन और सदन के सदस्यों एवं स्वयं सदन के अवमान का मामला माना गया। अपराध की प्रकृति को देखते हुए समिति ने यह संस्तुति करने का निर्णय किया कि अवमानकर्ता को सदन की बार में धिग्दंडित किया जाना चाहिए। तथापि, बाद में अवमानकर्ता ने बिना शर्त और अनर्हित क्षमा-याचना कर ली। अत: समिति ने यह संस्तुति की कि सदन इस मामले में आगे कोई महत्त्व न देते हुए अपनी गरिमा को ही बढ़ायेगा।[124]

> **राम नाथ गोयनका के मामले में** ''इंडियन एक्सप्रेस'' में प्रकाशित समाचार के अनुसार श्री गोयनका द्वारा सदन में एक मंत्री द्वारा दिये गये कतिपय वक्तव्यों को ''असद्भावपूर्वक/भ्रामक'' होना बताया गया था। समिति ने श्री गोयनका को विशेषाधिकार के उल्लंघन और सदन के अवमान का दोषी ठहराया था। तथापि, बीच की अवधि में श्री गोयनका के लोक सभा में निर्वाचित हो जाने पर इस मामले में किसी प्रकार की कार्यवाही की संस्तुति नहीं की गई थी।''[125]

> **इकॉनॉमिक टाइम्स से** संबंधित मामले में, जिसमें उक्त समाचार-पत्र के सम्पादकीय में, एक अल्पकालिक चर्चा के दौरान अपने भाषण के लिए एक सदस्य पर ''निकृष्ट'' आरोप लगाये गये थे, समिति ने यह निर्णय किया कि उक्त सम्पादकीय में कतिपय टिप्पणियों द्वारा सदस्य पर परोक्ष रूप से आरोप लगाये गये थे। तथापि, सम्पादक द्वारा समिति के समक्ष प्रकट किये गये खेद और बाद में उक्त समाचार-पत्र के एक अंक में क्षमा-याचना को प्रकाशित करने पर समिति ने यह संस्तुति की कि सदन द्वारा इस मामले में आगे कार्यवाही किये जाने की आवश्यकता नहीं है।[126]

सदन, इसके सदस्यों आदि पर आक्षेप लगाने वाले भाषण और लेख

सदन या इसकी समितियों की कार्यवाही पर या सदन के किसी सदस्य पर संसद्-सदस्य के रूप में उसके चरित्र या आचरण पर आक्षेप लगाने वाले भाषण देना या अपमान लेख मुद्रित या प्रकाशित करना विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान है। इस तरह के भाषणों या लेखों को अवमान मानते हुए इसके लिए सदन इस सिद्धान्त पर दण्डित करता है कि इस तरह के कार्य सदनों के सम्मान को कम करके उनके कार्यों के निष्पादन में अवरोध उत्पन्न करते हैं।[127]

> **'हिन्दुस्तान'** के मामले में, जिसमें हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय में ''निराधार, अनर्गल व अनुचित'' शीर्षक के अन्तर्गत कतिपय बातें कही गई थीं। विशेषाधिकार समिति ने, जिसके पास सदन द्वारा यह मामला भेजा गया था, यह निर्णय किया कि सम्पादकीय में उक्त विवादास्पद बातों और इसी प्रकार की दूसरी चीजों से संसद् के चरित्र और इसकी कार्यवाहियों पर और इसके सदस्यों के आचरण पर गंभीर आक्षेप लगाये गये हैं और इस तरह से इससे संसद् और इसके सदस्यों की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची है। समाचार-पत्र के सम्पादक द्वारा क्षमा-याचना करने और खेद व्यक्त करने पर समिति ने यह संस्तुति की कि इस मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए।[128]

तथापि, विशेषाधिकार के उल्लंघन के लिए यह आवश्यक है कि किसी संसद्-सदस्य के प्रति लिखित आक्षेप सदन के सदस्य होने के नाते उसके चरित्र या आचरण से संबंधित होना चाहिए।[129] अत: सदन के सदस्य होने की हैसियत के अतिरिक्त, सदस्यों पर लगाये गये आक्षेप विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन का अवमान नहीं माने जाते हैं।

> एक सदस्य ने यह शिकायत की कि बम्बई से प्रकाशित होने वाली एक साप्ताहिक पत्रिका में उनकी ''कामुक प्रवृत्ति'' पर बल देते हुए एक लेख में उनके बारे में कतिपय बातें कही गई हैं और ऐसा करना संसद्-सदस्य के रूप में अपने दायित्व के निर्वहन में उनकी उपयुक्तता पर आक्षेप लगाने के सदृश है। विशेषाधिकार समिति, जिसे सभापति द्वारा यह मामला सौंपा गया था, इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सम्बद्ध सदस्य के बारे में कही गई बातों और व्यंग्य-कथन का संसद्-सदस्य की हैसियत से उसके चरित्र अथवा आचरण से संबंध नहीं है और इस तरह से इसे विशेषाधिकार उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।[130]

इसी तरह से सदस्यों के विरुद्ध अस्पष्ट आरोपों वाले भाषणों या लेखों या विशेषत: किसी लोक-विवाद के संबंध में कदाशयता का आक्षेप लगाये बिना उनके संसदीय आचरण की कड़े शब्दों में आलोचना किये जाने को सदन अवमान या विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं मानता है।

> एक ऐसे मामले में, जिसमें बम्बई उच्च न्यायालय में एक मुकदमे में प्रस्तुत किये गये शपथ-पत्र के कतिपय अंशों के आधार पर शिकायत की गई थी, विशेषाधिकार समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उक्त अंशों में राज्य सभा के किसी भी सदस्य के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष आरोप नहीं लगाया गया है। तथापि, समिति की राय में उसमें अन्तर्विष्ट बातें अस्पष्ट हैं।[131]

> **'हिन्दुस्तान टाइम्स'** के मामले में विशेषाधिकार समिति 'नेशनल अफेयर्स' रूपक लेख में 'शेड्स ऑफ द स्टार चेम्बर' उप-शीर्षक से प्रकाशित कतिपय लेखों पर विचार कर रही थी। समिति के अनुसार उक्त रूपक लेख के लेखक ने कड़े शब्दों का प्रयोग करते हुए बिड़ला घराने के संबंध में राज्य सभा में हुई कतिपय चर्चाओं के बारे में उतने ही कड़े शब्दों में अपने विचार व्यक्त किये हैं। तथापि, समिति ने यह महसूस किया कि ऐसे लेखों को अनावश्यक महत्त्व देकर उन्हें सदन के विशेषाधिकार की परिधि के अन्तर्गत लाया जाना आवश्यक नहीं है। इस सम्बन्ध में समिति ने अनुमोदन सहित ग्लैडस्टोन की निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत किया:
>
> > विशेषाधिकार भंग का अत्यधिक विस्तृत दायरा है और इस सदन में ऐसे सभी मामलों पर ध्यान दिया जाना अत्यधिक अवांछनीय होगा जिनमें कि माननीय सदस्यों की अनुचित रूप से आलोचना की गई है। विशेषाधिकार भंग की स्पष्ट व्याख्या नहीं की जा सकती है। उचित अवसरों पर, जब सदन की राय में

> विशेषाधिकार के प्रयोग के लिए उपयुक्त मामला उपस्थित हो, इसके प्रयोग हेतु इसे अमूर्त रूप में ही बने रहने देना श्रेयस्कर होगा। इस हथियार का अनुचित उपयोग असमान शर्तों पर, चाहे जहां और चाहे जिसके द्वारा, संघर्ष को न्यौता देने के समतुल्य है... वस्तुत: अपना मत व्यक्त करने की स्वतंत्रता परमावश्यक है। नि:संदेह, अपना मत प्रकट करने की उक्त स्वतंत्रता का कभी-कभी दुरुपयोग भी किया जा सकता है, परन्तु मेरे विचार में इसके ऐसे दुरुपयोग पर ध्यान देना सदन की गरिमा के अनुरूप नहीं है।[132]

सदस्यों पर आक्षेप लगाना, चाहे व्यक्ति-विशेष के नाम न लिए गए हों या अन्यथा उल्लेख न किया गया हो, सदन पर आक्षेप लगाने के सदृश है।[133] राज्य सभा में ऐसे अवसर आये हैं जब किसी सदस्य के नाम का उल्लेख न किये जाने पर भी संसद्-सदस्यों के विरुद्ध दिये गये सामान्य वक्तव्यों पर सदन द्वारा विचार किया गया है।[134]

> **'टाइम्स ऑफ इंडिया'** में ''ब्लैक मनी एण्ड क्राइम'' शीर्षक से प्रकाशित एक लेख से, जिसका आरंभिक वाक्य ''डेकायट्स, स्मग्लर्स एण्ड बूटलैगर्स आर नाउ ऑनर्ड मेंबर्स ऑफ द लेजिस्लेचर्स'' था, उत्पन्न विशेषाधिकार संबंधी एक शिकायत का निपटान करते समय एक लम्बी व्यवस्था देते हुए सभापति ने सम्पादक के इस तर्क को अस्वीकृत कर दिया कि इसमें राज्य सभा का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। अत: यहां इस मामले को नहीं उठाया जा सकता है। उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह निर्णय दिया कि इस प्रकार के सामान्य वक्तव्य ''किसी सदस्य विशेष या किसी सदन विशेष के प्रति अपमान-लेख नहीं है, अपितु पूर्णत: अपमान-लेख है...(विवादास्पद वाक्य में) बहुसंख्या-वाचक शब्दों का प्रचुर प्रयोग सामान्यत: विधायी संस्थाओं को बदनाम करने की इच्छा को प्रकट करता है और इन्हें यह दर्शाने के लिए जानबूझकर प्रयुक्त किया गया है कि विधायक सर्वत्र कलंकित होते हैं।''[135]

ऐसे प्रत्येक मानहानिकारक वक्तव्य के मामले को, जोकि तकनीकी दृष्टि से विशेषाधिकार भंग या सदन का अवमान हो सकता है, गंभीरता से लेना या उस पर कोई कार्यवाही करना सदन की गरिमा के अनुरूप नहीं माना जाता है।

> 5 सितम्बर, 1974 को सदन ने यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि 'प्रतिपक्ष' नामक हिन्दी साप्ताहिक में 'संसद् या चोरों और दलालों का अड्डा' शीर्षक से प्रकाशित लेख विशेषाधिकार के उल्लंघन और सदन के अवमान का एक गंभीर मामला है और सदन इस मामले में आगे कोई कार्यवाही न करके अपनी गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखेगा।[136]

सदन और इसके सदस्यों आदि पर लगाये गये आक्षेपों से उत्पन्न विशेषाधिकार के मामलों में सामान्यतया प्रयुक्त किये जाने वाले कुछ आधारभूत मानदंडों का ऊपर उल्लेख किया गया है। तथापि, यह निर्णय करना कि क्या विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन का अवमान हुआ है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कोई भी दो मामले एक-समान नहीं होते, अत: सदन या विशेषाधिकार समिति को अपने समक्ष उपलब्ध तथ्यों का मूल्यांकन करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की कुछ स्वतंत्रता होती है। तथापि, इन मामलों का अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि जब सदन के सदस्यों और इस तरह से स्वयं सदन या सभापीठ या सदस्यों की हैसियत से किसी सदस्य विशेष पर आक्षेप लगाये जाने के बारे में कोई शिकायत की जाती है, तो सदन सामान्यत: निम्न सिद्धान्तों को ध्यान में रखता है :

(1) जब तक कि सदन, इसके पीठासीन अधिकारी या सदस्यों पर गंभीर आक्षेप न लगाया जाये और सभा के सम्मान में कमी कर इसके प्राधिकार को कम करने के प्रयोजन से ऐसा न किया जाये, तब तक विशेषाधिकार उल्लंघन के लिए दण्डात्मक कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए।

> 24 मई, 1990 को सदन ने यह निर्णय करते हुए एक संकल्प स्वीकृत किया कि भूतपूर्व संसद् सदस्य (श्री के॰ के॰ तिवारी) के वक्तव्य से, जो उस दिन के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है, राज्य सभा के सभापति के पद की गरिमा कम हुई है और इससे सदन का अवसान हुआ है। वक्तव्य की पुष्टि के उपरान्त, अवमानकर्ता को संकल्प में यथासंस्तुत, सदन की बार में बुलाकर धिग्दण्डित किया गया।[137]

(2) संसदीय विशेषाधिकार संबंधी कानून को इस तरह से लागू नहीं किया जाना चाहिए जिससे स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने या आलोचना करने में किसी प्रकार की कोई रुकावट आये अथवा उत्साह भंग हो।

विशेषाधिकार समिति ने एक मामले में निम्नलिखित टिप्पणी की:

...प्रत्येक नागरिक को लोक रुचि के किसी विषय पर उचित आलोचना और, या टिप्पणियां करने का अधिकार है और यह सुझाव देना सही नहीं है कि सदस्य के नाते अपने दायित्वों के निर्वहन में किसी संसद्-सदस्य की आलोचना नहीं की जा सकती। किसी नागरिक द्वारा उचित टिप्पणियां या आलोचना विशेषत: उपयुक्त शब्दों में कतिपय तथ्यों को अपने ढंग से प्रस्तुत करना, जोकि सदन में किसी सदस्य या मंत्री द्वारा कही गई बात से भिन्न हो सकता है, आपत्तिजनक नहीं होगा। तथापि, जब नागरिक उचित टिप्पणी अथवा आलोचना की हद पार कर जाता है और किसी संसद्-सदस्य पर अनुचित उद्देश्य के आक्षेप लगाने लगता है, तब वह स्वयं को सदन के दाण्डिक प्राधिकार के अन्तर्गत ले आता है।[138]

समिति ने एक मामले में समाचार-पत्रों में प्रकाशित लेखों के संदर्भ में यह टिप्पणी की थी:

समिति को इस बात की जानकारी है कि समाचार-पत्रों को सार्वजनिक महत्त्व के मामलों में बिना किसी भय अथवा पक्षपात के अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए... किन्तु तथ्यों को तोड़-मरोड़कर और किसी विशेष प्रयोजन से आरोप लगाकर इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए।[139]

एक अन्य मामले में, सभापति ने ''पेट्टी लिटिल लाइज़ इन पार्लियामेंट'' शीर्षक से प्रकाशित इण्डियन एक्सप्रेस के कार्यकारी संपादक के लेख से उत्पन्न विशेषाधिकार सूचना को अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी करते हुए निपटाया था कि ''समाचार-पत्र घटनाओं को सदा निकट से और आलोचनात्मक दृष्टि से देखते हैं... समाचार-पत्र जनता की आंख और कान हैं और यदि प्रत्येक नागरिक को अन्य नागरिकों के कार्यों की आलोचना करने का अधिकार है तो समाचार-पत्रों को भी, जिनका व्यवसाय, सार्वजनिक कार्यों में अनियमितताओं को जनता के समक्ष उजागर करना है, यह अधिकार प्राप्त है।[140]

बाद के एक अन्य मामले में सभापति महोदय ने पुन: यह टिप्पणी की:

जब एक ऐसी स्थिति आ जाती है और लेखन पत्रकारिता की कला न रहकर प्रत्यक्ष झूठ अथवा अन्य प्रकार से संसद् और इसके सदस्यों के कार्यकरण के मार्ग की अनुचित बाधा बन जाता है केवल तभी दण्डित किए जाने की कार्यवाही करने की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में सदन अपने प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करने में कभी हिचकिचाएगा नहीं।[141]

(3) संसदीय जांच की प्रक्रिया का उपयोग इस प्रकार से नहीं किया जाना चाहिए कि जिससे गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्यों को महत्त्व मिले। ऐसे मामलों में परिपाटी यह है कि उनकी उपेक्षा कर दी जाए[142] अथवा उन्हें अपना ध्यान देने के उपयुक्त न समझा जाए[143] अथवा उन्हें तुच्छ स्वरूप का समझा जाए।[144]

कई सदस्यों ने इस सदन के सदस्य श्री खुशवन्त सिंह के विरुद्ध दिनांक 6 अगस्त, 1983 के 'दि हिन्दुस्तान टाइम्स' में उनके सुविख्यात स्तंभ–विद मेलाइस टुवार्ड्स वन एण्ड ऑल के संबंध में इस आधार पर विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी कि एक ऐसे अंग्रेज लेखक के लेखों के कुछ अंशों को हमारी संसद् के सदस्यों पर लागू कर दिया गया है, जिसने आमतौर पर राजनेताओं की और विशेष रूप से संसद्-सदस्यों की स्वयं अपनी परिलब्धियां बढ़ाने के पक्ष में मतदान करने के लिए आलोचना की थी। सभापति ने इस लेख का बुद्धिमत्तापूर्ण विश्लेषण करने के उपरांत टिप्पणी की थी कि ऐसे लेखों पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।[145]

एक अन्य मामले में विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना के माध्यम से सभापति का ध्यान 3 अगस्त, 1986 के नवभारत टाइम्स में प्रकाशित आचार्य रजनीश की इस टिप्पणी की ओर दिलाया गया था कि ''भारत की

संसद् के सदस्य मानसिक रूप से अल्पविकसित हैं। यदि जांच की जाए तो मालूम पड़ेगा कि उनकी मानसिक आयु केवल 14 वर्ष है।'' सभापति ने टिप्पणी की थी: सामान्यत: हम ऐसी टिप्पणियों को ध्यान देने योग्य नहीं समझते। ... एक निराश व्यक्ति की निन्दापूर्ण टिप्पणियों अथवा गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्यों को कोई महत्त्व देना हमारी प्रतिष्ठा के खिलाफ है। उन्होंने साधु-संतों को ''अच्छे व्यक्तियों को अकेला छोड़ देने'' तथा समाचार-पत्रों को सांसदों के खिलाफ ऐसे गैर-जिम्मेदाराना वक्तव्यों का प्रचार न करने की सलाह देते हुए यह मामला बन्द कर दिया क्योंकि ऐसा करके वे संसद् नामक महान संस्था की कोई सेवा नहीं कर रहे हैं।[146]

(4) जब दोषी व्यक्ति खेद व्यक्त करता है और बिना शर्त माफी मांग लेता है और आरोप लगाने वाले लेख अथवा वक्तव्य को वापस ले लेता है तो सामान्यत: सदन ऐसे मामलों में आगे कार्यवाही नहीं करता। भले ही सदन अथवा समिति इस निर्णय पर पहुंच चुकी हो कि विशेषाधिकार का उल्लंघन अथवा सदन का अवमान हुआ है।[147]

'थॉट' मामले में,[148] ऑर्गेनाइज़र[149] के मामले में और राम गोपाल गुप्ता के मामले[150] में विशेषाधिकार समिति ने यह सिफारिश की थी कि संबंधित व्यक्तियों द्वारा खेद व्यक्त किए जाने और माफी मांगे जाने को ध्यान में रखते हुए सदन द्वारा आगे कोई कार्यवाही न की जाये। समिति की सिफारिशों से सहमति व्यक्त करते हुए सदन द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत कर लिये गए थे।

कुछ मामलों में सदस्यों पर कथित रूप से आक्षेप लगाये जाने पर विशेषाधिकार के उल्लंघन की शिकायतों को समिति को भेजे बिना ही संबंधित समाचार-पत्रों के साथ उठाया गया और संबंधित समाचार-पत्रों से उस संबंध में स्पष्टीकरण मांगे गए। तत्पश्चात् सदन उनके द्वारा खेद व्यक्त किए जाने को ध्यान में रखते हुए इस मामले को समाप्त समझने पर सहमत हो गया था।[151]

शपथ-पत्रों/रिटों में दिये गये विवरण

सभा न्यायालयों में दायर की गयी रिट याचिकाओं या शपथ-पत्रों में दिये गये विवरणों का संज्ञान कर सकेगी यदि उनमें विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन का अवमान अन्तर्ग्रस्त हो।

राज्य सभा की 1 मई, 1963 को हुई बैठक में, बम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष एक व्यवसायी द्वारा दायर किये गये एक शपथ-पत्र में अन्तर्विष्ट कतिपय पैराग्राफों से उत्पन्न विशेषाधिकार के उल्लंघन की एक शिकायत को, सदन द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया था। उक्त शपथ-पत्र में, अन्य बातों के साथ-साथ यह बताया गया था कि प्रतिवादी पूर्व-नियोजित षड्यन्त्र के तहत संसद्-सदस्यों के बीच एक पुस्तिका (पैम्फलैट) परिचालित करने में सफल हो गये ताकि उक्त व्यवसायी के विरुद्ध सदन में भाषण दिये जा सकें और मंत्रियों आदि से इस मामले में प्रश्न पूछे जा सकें। समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि आक्षेपित पैराग्राफों में राज्य सभा के किसी सदस्य के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष या सुस्पष्ट आक्षेप नहीं लगाया गया है। अत: समिति ने यह सिफारिश की थी कि इस मामले पर आगे कार्यवाही न की जाये।[152] सदन समिति के प्रतिवेदन से सहमत था।[153]

एक कम्पनी और उसके निदेशक द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय में दायर की गयी एक रिट याचिका में अन्तर्विष्ट कतिपय विवरणों को लेकर एक सदस्य ने उनके विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी। सदस्य द्वारा यह तर्क दिया गया था कि उक्त याचिका में, याचिकादाताओं ने एक प्रश्न के संबंध में राज्य सभा की कार्यवाही के कतिपय अंशों का उल्लेख किया था और ऐसा करके उन्होंने प्रश्न पूछने वाले सदस्यों तथा उसका उत्तर देने वाले मंत्री की मंशा के संबंध में संदेह व्यक्त किया था। सभापति द्वारा इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया गया जिसे सदन की उसी कार्यवाही से संबंधित एक अन्य मामला भी सौंपा गया था। संबंधित व्यक्ति के लोक सभा के लिए निर्वाचित हो जाने को ध्यान में रखते हुए समिति ने इस मामले में आगे कोई कार्यवाही किये जाने की सिफारिश करना आवश्यक नहीं समझा।[154]

सदस्यों पर हमला आदि

किसी सदस्य को उस समय, जब वह अपने कर्त्तव्यों का निष्पादन कर रहा हो, अर्थात् जब वह सदन में उपस्थित हो या जब वह सदन के लिए आ रहा हो या सदन से जा रहा हो, बाधित करना या उत्पीड़ित करना या उस पर हमला करना, विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान है। तथापि, जब कोई सदस्य किसी संसदीय कर्त्तव्य का पालन न कर रहा हो तब यह विशेषाधिकार उपलब्ध नहीं होता है।

> पश्चिमी बंगाल में एक मिल के कर्मकारों के आवासीय क्वार्टरों में सदन के एक सदस्य पर कुछ पुलिस वालों द्वारा कथित रूप से हमला किए जाने के कारण कुछ सदस्यों ने विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने की एक शिकायत की सूचना दी थी। यह मामला सदन में भी उठाया गया था। बाद में गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने सदन में बताया कि पश्चिमी बंगाल की सरकार ने इस आरोप का खंडन किया है। संबंधित सदस्य ने इस खंडन को ''नितांत असत्य'' और ''सफेद झूठ'' बताया था। सभापति ने इस मामले पर विचार किया और इसे विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने, उसके समक्ष दिये गये साक्ष्य के आधार पर यह बताया कि कथित घटना उस समय घटित हुई थी जब संबंधित सदस्य उस क्षेत्र में कर्मकारों से बात कर रहा था। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि घटना के समय वह सदस्य संसदीय कर्त्तव्यों का पालन कर रहा था और इसलिए उसकी गिरफ्तारी तथा उस पर कथित रूप से किया गया हमला, मामले की परिस्थितियों को देखते हुए विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन अथवा सदस्य के अवमान का मामला नहीं बनता।[155]

सदस्यों को अभित्रस्त किया जाना

सदस्यों के संसदीय आचरण को अनुचित तरीकों से प्रभावित करने के प्रयास को अवमान समझा जा सकता है।[156]

> विशेषाधिकार समिति ने एक सदस्य की इस शिकायत पर विचार किया कि बम्बई स्थित एक फर्म के प्रबंध-निदेशक ने अपनी कम्पनी से संबंधित मामले को सदस्य द्वारा विशेष उल्लेख के जरिये सदन में उठाये जाने के संबंध में उक्त सदस्य को, दो बार दूरभाष पर तथा पत्र लिखकर संसद्-सदस्य के रूप में उसके संसदीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करने से अभित्रस्त और निरुत्साहित किया है। संबंधित व्यक्ति के इस दावे को कि संसद्-सदस्य को उसके संसदीय कर्त्तव्यों के पालन से अभित्रस्त या निरुत्साहित करने का उसका कोई इरादा नहीं था और उसकी बिना शर्त क्षमा-याचना को ध्यान में रखते हुए समिति ने यह सिफारिश की कि इस मामले में आगे कार्यवाही न की जाये।[157]

विशेषाधिकार का उल्लंघन या अवमान किये जाने पर दण्ड देने की सदन की शक्ति

अवमान या विशेषाधिकार के उल्लंघन के लिए दण्ड देने की सदन की शक्ति को ''संसदीय विशेषाधिकार के आधार तत्व'' के रूप में, ठीक ही, वर्णित किया गया है तथा सदन को, अपने कृत्यों का निर्वहन करने और अपने प्राधिकार और विशेषाधिकार की रक्षा करने में समर्थ बनाने के लिए इसे आवश्यक समझा गया है।[158] ऐसी शक्ति के बिना सदन ''अत्यधिक अवमान और अकुशलता से ग्रस्त हो जायेगा।'' अनेक न्यायालयी मामलों में इस शक्ति का न्यायिक्त अनुमोदन किया गया है।[159]

जिस अवधि के लिए सदन, अवमान किये जाने पर किसी दोषी व्यक्ति को अभिरक्षा और कारागार में भेज सकता है, वह सदन के सत्र की अवधि तक अर्थात् सदन का सत्रावसान होने तक सीमित है।[160]

विशेषाधिकार का उल्लंघन या अवमान करने के लिए दंड

कारावास और धिग्दंड

उन मामलों में जहां विशेषाधिकार का उल्लंघन या सदन के अवमान का अपराध गम्भीर स्वरूप का हो वहां दोषी व्यक्तियों को कारावास का दण्ड दिया जा सकता है। ऐसे भी अवसर आये हैं जब नारेबाजी करने/सदन में इश्तहार या अन्य आपत्तिजनक वस्तु फेंककर सदन का घोर अवमान करने के लिए राज्य सभा ने दोषी व्यक्तियों को कारावास की सजा सुनाई है। (आगे **देखिए**) अपेक्षाकृत कम गम्भीर मामलों में (दो अवसरों पर), अवमान करने वाले व्यक्तियों को सदन में बुलाकर धिग्दंडित किया गया। (पीछे **देखिए**)

जुर्माने का अधिरोपण

एक पुस्तक के सहलेखकों के लिए कारावास/धिग्दंड की सिफारिश करते समय विशेषाधिकार समिति ने यह विचार किया था कि उक्त लेखकों द्वारा, जोकि प्रकाशक भी थे, किये गये अवमान में आर्थिक अपराध के लक्षण विद्यमान थे और इस अवस्था में उन व्यक्तियों के अनधिकृत प्रकाशन से उन्हें धन का लाभ हुआ है और इसलिए उन पर जुर्माना किया जाना ही सबसे उपयुक्त शास्ति होगी। तथापि, इस विषय पर, कि क्या सदन को विशेषाधिकार के उल्लंघन के लिए जुर्माने की शास्ति अधिरोपित करने की शक्ति प्राप्त है, विधि और पूर्व निर्णयों की जांच करने और इस मामले में सक्षम राय लेने के पश्चात् समिति को, सदन के पास जुर्माने की शास्ति अधिरोपित करने की शक्ति होने पर संदेह हुआ।[161]

> महान्यायवादी ने, जिनसे समिति ने अनौपचारिक रूप से राय मांगी थी, यह टिप्पणी की थी: ''यदि सदन की यह राय है कि दोषी व्यक्तियों, जो सदन के सदस्य अथवा बाहरी व्यक्ति हैं, के विरुद्ध एक बेहतर भयोपरापी के रूप में जुर्माना अधिरोपित किया जा सकता है और ऐसी शक्ति कभी ब्रिटेन के 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के पास थी जो प्रयोग न किए जाने के कारण अप्रचलित हो गई है और जिसे अब पुनर्जीवित किया जाना चाहिये जिसके लिए उचित तरीका यही होगा कि इसे किसी एक नियमित विधान द्वारा पुनर्जीवित किया जाये न कि किसी एक सदन द्वारा संकल्प पारित करके इसे पुनर्जीवित किया जाये।''[162]
>
> इस संबंध में यह टिप्पणी करना भी रोचक होगा कि 'हाउस ऑफ कॉमन्स' की संसदीय विशेषाधिकार संबंधी प्रवर समिति ने 1967 में यह सिफारिश की थी कि जुर्माने को कानूनी प्राधिकार के साथ अधिरोपित करने हेतु हाउस को समर्थ बनाने के लिए विधान पुर:स्थापित किया जाना चाहिये। विशेषाधिकार समिति ने इस सिफारिश को 1977 में भी दोहराया था। तथापि, इस संबंध में कोई कार्यवाही नहीं की गई।[163]

दोषी व्यक्तियों का अभियोजन

संयुक्त लेखकों के उपर्युक्त मामले में भी समिति ने यह सिफारिश की थी कि सरकार को प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम और भारतीय दंड संहिता के अधीन दोष के लिए लेखकों (और अन्य प्रकाशकों) के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही प्रारंभ करने की दृष्टि से उक्त मामले की जांच करनी चाहिये।[164]

सदन द्वारा अपने ही सदस्यों को दंड दिया जाना

सदन की शास्तिक शक्ति का प्रयोग न केवल किसी बाहरी व्यक्ति के विरुद्ध किया जाता है बल्कि सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध भी किया जाता है। सदन से भिन्न किसी अन्य प्राधिकरण अथवा अभिकरण को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह सदन में किसी सदस्य द्वारा की गई भूल-चूक के लिए उसे दण्डित करे। सदन की अपने सदस्यों पर अधिकारिता और सदन के भीतर अनुशासन लागू करने का उसका

अधिकार पूर्ण और अनन्य है।

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियम सभापति को सदन में व्यवस्था बनाये रखने और अपने निर्णयों को लागू करने की शक्ति प्रदान करते हैं[165] और सदस्यों को सदन से बाहर निकालने और उनके निलम्बन का उपबंध करते हैं ताकि सभापति, सदस्यों द्वारा अव्यवस्था फैलाने, सभापीठ के प्राधिकार की अवहेलना किए जाने और सदन की कार्यवाही को जानबूझकर बाधित करके उक्त नियमों का दुरुपयोग किए जाने पर, उन पर अनुशासन लागू कर सके।[166]

यदि कोई उच्छृंखल सदस्य सभापीठ द्वारा सदन से बाहर निकलने का निदेश दिए जाने के बावजूद भी, सदन से बाहर नहीं जाता है तो सभापति कहकर उसे जबरदस्ती सदन से बाहर निकलवा सकता है और उसके निलम्बन के लिए तत्काल एक प्रस्ताव रख सकता है। यदि वह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो संबंधित सदस्य निलम्बित कर दिया जाता है।[167]

किसी सदस्य को उसके विच्छृंखल व्यवहार के लिए न केवल सदन के भीतर बल्कि सदन के बाहर उसके किसी ऐसे आचरण के लिए भी दंडित किया जा सकता है, जिससे सदन की गरिमा और उसके प्राधिकार को क्षति पहुंची हो। सदन के बाहर सदस्यों के किसी ऐसे आचरण के लिए, जो सदन और उसके सदस्यों की गरिमा के प्रतिकूल हो और सदस्यों से अपेक्षित व्यवहार के स्तर से असंगत हो, सदस्यों को दण्डित करने हेतु सदन की शक्ति का उस समिति के प्रतिवेदन में उल्लेख किया गया है जो 1976 में राज्य सभा के सदस्य श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी के आचरण और क्रिया-कलापों की जांच करने के लिए नियुक्त की गई थी। श्री स्वामी को सदन से निकाले जाने हेतु 15 नवम्बर, 1976 को उपस्थित किए गये और उसी दिन सर्वसम्मति से स्वीकृत किए गये प्रस्ताव पर उन्हें सदन से निष्कासित किया गया था। (पीछे **देखिए**)

तथापि, किसी सदस्य के निष्कासन के लिए सदन की शक्ति के बारे में दो विरोधाभासी निर्णय दिये गये हैं। 1977 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने यह घोषित किया था कि भारत में सदनों को निष्कासन की शक्ति प्राप्त नहीं है।[168] मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने 1966 में यह घोषित किया था कि सदनों को ऐसी शक्ति प्राप्त है।[169]

दर्शक दीर्घा से विघ्न डालना

दर्शकों द्वारा सदन की कार्यवाही में या तो नारेबाजी करके या इश्तहार आदि फेंककर व्यवधान डाले जाने को सदन द्वारा एक गम्भीर अपराध और सदन का घोर अवमान माना जाता है। ऐसे मामलों में, चूंकि सबके सामने सदन का अवमान किया जाता है, इसलिए सदन, सामान्यत: दोषी व्यक्ति की बात सुने बिना ही, उसके कार्य के लिए उसे दण्डित करने हेतु कार्यवाही करता है। ऐसे मामलों में अवमान करने वाले व्यक्ति को एक विनिर्दिष्ट अवधि के लिए कारावास का दण्ड दिया जाता है या फिर अपराध की गम्भीरता को देखते हुए उसे चेतावनी दी जाती है।

21 दिसम्बर, 1967 को, एक व्यक्ति को, जिसने दर्शक दीर्घा से नारेबाजी की थी और सदन में कुछ इश्तहार फेंके थे, एक प्रस्ताव स्वीकृत होने पर गम्भीर अपराध और घोर अवमान करने का दोषी पाया गया था और उसे सत्र के समापन तक साधारण कारावास की सजा दी गयी थी और उसे दिल्ली की तिहाड़ जेल में निरुद्ध किया गया था। जब उक्त प्रस्ताव पर चर्चा चल रही थी तब सदन के नेता ने, जिन्होंने उक्त प्रस्ताव को उपस्थित किया था, यह बताया कि ऐसी ही एक और घटना घटित हो चुकी है। उन्होंने तद्नुसार दूसरी घटना के लिए भी एक और प्रस्ताव उपस्थित किया। मत-विभाजन के द्वारा दोनों ही प्रस्ताव स्वीकृत हुए। तद्नुसार, सभापति द्वारा वारंट जारी किए जाने और जेल अधीक्षक को सम्बोधित किए जाने पर दोषी व्यक्तियों को जेल में रखा गया। जेल अधीक्षक द्वारा यह स्पष्टीकरण मांगे जाने पर कि दोनों व्यक्तियों को किस तारीख को और किस समय रिहा किया जाये, सदन ने चर्चा के पश्चात् एक प्रस्ताव पारित किया कि संबंधित व्यक्तियों को प्रस्ताव

की तारीख को म०प० 5 बजे रिहा कर दिया जाये चूंकि सत्र उस दिन समाप्त हो रहा था।[170]

एक अन्य घटना में दर्शक दीर्घा से सदन में इश्तहार फेंकने वाले दो व्यक्तियों को सदन द्वारा एक प्रस्ताव के जरिये उस दिन सदन के उठने तक रक्षा-प्रेक्षा अधिकारी की अभिरक्षा में निरुद्ध किए जाने का आदेश दिया गया था।[171]

एक दूसरी घटना में 18 मार्च, 1982 को चौदह व्यक्तियों ने दर्शक दीर्घा से नारे लगाये थे। उन्हें रक्षा-प्रेक्षा कर्मचारियों द्वारा तत्काल अभिरक्षा में ले लिया गया। सदस्यों ने इस घटना पर अपनी चिन्ता व्यक्त की। मध्याह्न-भोजन अवकाश के दौरान सदन के नेता ने अन्य दलों के नेताओं के साथ परामर्श किया और सदन के पुन: समवेत होने के पश्चात् उन्होंने सदन का उक्त व्यक्तियों द्वारा अवमान किये जाने के संबंध में एक प्रस्ताव उपस्थित किया। जिसमें यह सिफारिश की गई कि उक्त व्यक्तियों को 24 मार्च, 1982 के मध्याह्न तक साधारण कारावास की सजा देकर दिल्ली की तिहाड़ जेल में निरुद्ध किया जाये।[172]

23 मार्च, 1982 को एक महिला दर्शक को, जिसने दर्शक दीर्घा से नारे लगाये थे, चेतावनी देकर छोड़ दिया गया (क्योंकि रक्षा-प्रेक्षा अधिकारी की सूचना के अनुसार वह मानसिक रूप से व्यथित अवस्था में थी)।[173]

एक युवा दर्शक को, जिसने दर्शक दीर्घा से नारे लगाने का प्रयत्न किया था, उसके द्वारा कार्यवाही में विघ्न डाले जाने से पहले ही पकड़ लिया गया। उसे एक सख्त चेतावनी देकर, जिसका कि उपसभापति ने सुझाव दिया था और जिस पर सदन ने अपनी सहमति व्यक्त की थी, छोड़ दिया गया।[174]

21 नवम्बर, 1983 को एक दर्शक ने दर्शक दीर्घा से नारे लगाये थे और सदन में एक चप्पल फेंकी थी। इस पर सदन ने उसे सत्र की समाप्ति तक (जो 22 दिसम्बर, 1983 को समाप्त हुआ था) साधारण कारावास की सजा देने के संबंध में संकल्प पारित किया था।[175]

सदन में जानबूझकर भ्रामक वक्तव्य देना

यह निश्चित है कि जानबूझकर दिए गए भ्रामक वक्तव्य को विशेषाधिकार का उल्लंघन और सदन का अवमान माना जाये। 'मे' के अनुसार, जानबूझकर दिए गए भ्रामक वक्तव्य को सदन अपना अवमान मान सकता है। 1963 में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' ने यह संकल्प पारित किया था कि भूतपूर्व सदस्य ने वैयक्तिक वक्तव्य देते हुए यह स्वीकार किया था कि उसने पहले जो कुछ कहा था वह सही नहीं था और जिसके लिये वह घोर अवमान करने का दोषी है।[176] इस मुद्दे से संबंधित एक मामले की जांच करते समय राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति ने 'मे' की टिप्पणियों के निहितार्थों का इस प्रकार उल्लेख किया था:

समिति के विचार से, उपर्युक्त टिप्पणी से यह निष्कर्ष निकलता है कि भ्रामक अथवा भ्रम पैदा करने वाला कार्य, भ्रम में डालने या धोखा देने के इरादे से जानबूझकर किया गया होना चाहिए। अत: सदन को जानबूझकर भ्रम में डालने के अभिकथित अपराध में किसी स्पष्ट उद्देश्य का होना आवश्यक है। समिति यह जानती है कि सदन के समक्ष ऐसे बहुत-से वक्तव्य दिए जाते हैं जो कभी-कभी पूर्णत: सत्य नहीं पाये जाते हैं। ऐसे बहुत-से वक्तव्य हो सकते हैं जो सदन के समक्ष दिए गए हों और जिनके बारे में अंत में यह पाया जाये कि वे, वक्तव्य देने वाले व्यक्तियों को उपलब्ध करायी गई गलत सूचना पर आधारित थे। इसलिए यदि व्यक्तियों ने ऐसे वक्तव्य इस विश्वास के साथ दिए हैं कि वक्तव्य में दी गई सूचना सत्य है तो समिति के विचार से ऐसे वक्तव्य अवमान करने वाले नहीं कहलायेंगे। इस संबंध में कौल और शकधर ने भी यह टिप्पणी की है:

> यदि किसी सदस्य या मंत्री द्वारा सदन में कोई वक्तव्य दिया जाता है जिसके बारे में किसी अन्य सदस्य का विश्वास है कि वह असत्य, अपूर्ण या गलत है तो उससे विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता। यदि कोई गलत वक्तव्य दिया जाता है तो ऐसे अन्य उपाय हैं जिनके द्वारा इस मामले का निर्णय किया जा सकता है। विशेषाधिकार के उल्लंघन या सदन के अवमान का मामला बनाने के लिए यह साबित करना होगा कि वक्तव्य न केवल गलत या भ्रामक था बल्कि यह सदन को भ्रम में डालने के लिए जानबूझकर दिया गया था। विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला केवल तभी उत्पन्न हो सकता है जब कोई सदस्य

> या मंत्री जानबूझकर, सोद्देश्य और जानते हुए कोई असत्य और गलत वक्तव्य दे। [कौल और शकधर, तीसरा संस्करण, खण्ड-I, पृष्ठ 234]

समिति ने लोक सभा अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर की गई टिप्पणियों/दिए गये विनिर्णयों का भी उल्लेख किया और यह विचार व्यक्त किया कि भ्रामक वक्तव्यों से उत्पन्न विशेषाधिकार के उल्लंघन के संदर्भ में सोद्देश्यता या भ्रमित करने का इरादा, अपराध के मूल तत्व हैं।[177]

पुलिस अधिकारी की गिरफ्तारी और बागपत में एक महिला के साथ बलात्कार के समाचार के बारे में मंत्रियों के अभिकथित भ्रामक वक्तव्यों के संबंध में सदन में उठाये गये दो मामलों का निपटारा करते हुए सभापति ने इस संकल्पना को इस तरह स्पष्ट किया था:

> इस संबंध में भ्रमित करने का आशय केवल यही होना चाहिए कि मंत्री कुछ ऐसी मिथ्या बात कहकर... जो सत्य नहीं थी, सदन को गलत दिशा की ओर ले गये हैं। इस मामले की जांच-पड़ताल वक्तव्य देने वाले व्यक्ति के आचरण से संबंधित है न कि किसी सामान्य मामले से।[178] सदन को भ्रमित करने के आरोप की पुष्टि निम्नलिखित आधारों में से किसी एक आधार पर ही होती है अर्थात्:
>
> (1) मंत्री ने कोई ऐसा वक्तव्य दिया जिसके गलत होने की उसे जानकारी थी; या
>
> (2) उसने कोई ऐसा वक्तव्य दिया जिसके बारे में उसे स्वयं यह विश्वास नहीं था कि वह सत्य है; या
>
> (3) उसने सम्यक् सावधानी बरते बिना तथा ध्यान दिए बिना कोई ऐसा वक्तव्य दिया है जिसमें उसने असावधानीवश किसी बात के सत्य होने का दावा किया है, जो बाद में असत्य निकली है।[179]

पहली दो परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि मंत्री द्वारा जानबूझकर भ्रमित करने का मामला बनना चाहिए। तीसरा मामला सीमा-रेखा पर है, जिसमें वक्तव्य देने वाला व्यक्ति इस बारे में अत्यंत उदासीन है कि वह जो कुछ कह रहा है वह सत्य है अथवा नहीं। किसी व्यक्ति से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह किसी बात के सत्य अथवा असत्य होने का पता लगाये बिना ही उसके बारे में कोई वक्तव्य दे। यदि वह ऐसा करता है तो बाद में यह पता लगने पर कि जिस बात के सत्य होने का उसने दावा किया था वह असत्य थी, उसे अपनी लापरवाही और विवेकहीनता के लिए कीमत चुकानी चाहिये। यह बात उस स्थिति में लागू नहीं होती है जब कोई व्यक्ति उन समुचित स्थानों पर जहां उसे पूछताछ करनी चाहिये, सम्यक् पूछताछ करने और उन सभी व्यक्तियों से जिनके बारे में यह संभावना है कि उन्हें तथ्य की जानकारी होगी, जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् इस विश्वास के साथ कोई वक्तव्य देता है कि वह वक्तव्य सत्य है तो वह इस तरह के आरोप से बच जायेगा क्योंकि जिन लोगों से उसने पूछताछ की थी, उन लोगों ने उसे भ्रमित किया था। अत: किसी तथ्य के बारे में यह जानते हुए कि वह असत्य है या उसके सत्य होने का विश्वास न होते हुए या सच के बारे में इतना अधिक उदासीन रहते हुए कि इस बात की परवाह न करना कि जो कुछ उसने कहा है वह सत्य है अथवा नहीं, तथ्य की जानबूझकर गलत बयानी करना ही आरोप का मुख्य आधार है।[180]

इस संबंध में मंत्रियों के अभिकथित भ्रामक वक्तव्यों के आधार पर सदन में उठाये गये और सभापति द्वारा निपटाये गये कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों का भी उल्लेख किया जा सकता है।

> सभापति ने संबंधित मंत्री, जिस पर केन्द्रीय जांच ब्यूरो की जांच के संबंध में भ्रामक वक्तव्य देने का आरोप लगाया गया था, को सुनने के पश्चात् कहा कि विशेषाधिकार के उल्लंघन का कोई मामला नहीं बनता।[181]
>
> किसी समाचार-पत्र के सम्पादकीय लेख में संबंधित मंत्री द्वारा दिए गये उस वक्तव्य का खण्डन किया गया था जिसमें इस बात से इंकार किया गया था कि केन्द्रीय जांच ब्यूरो के बारे में उसके मंत्रालय ने कतिपय सूचना दी थी। दो सदस्यों ने विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी कि संबंधित मंत्री ने सदन में जो वक्तव्य

दिया है उसके बारे में उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह दावा किया है कि उन्होंने उस समय अपनी जानकारी के अनुसार वक्तव्य दिया था। सभापति ने अपनी व्यवस्था देते हुए यह कहा था कि वह यह मानने में असमर्थ हैं कि इस मामले में यह साबित हो गया है कि मंत्री ने सदन में ऐसा कोई वक्तव्य दिया था, जिसके बारे में उस दिन उन्हें यह विश्वास था कि वह असत्य है और इस तरह उन्होंने सदन को भ्रमित करने का प्रयास किया था। विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला उठाये जाने के लिए सहमति देने से इंकार कर दिया गया था।[182]

एक प्रश्न का अभिकथित रूप से गलत उत्तर दिए जाने से उत्पन्न एक और मामले में सभापति ने कहा था कि शिकायतकर्त्ता सदस्य की गलतफहमी न्यायालय में मूल अभियोजन और बाद में कार्यवाही के न्यायनिर्णयन के संबंध में स्थिति को संभवत: गलत ढंग से समझने से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है।[183]

सदन को अभिकथित रूप से भ्रमित किए जाने के एक और मामले में संबंधित मंत्री ने एक प्रश्न के अपने उत्तर के संशोधनार्थ एक विवरण सभा पटल पर रखा था और सभापति का विचार था कि मंत्री का सभा को भ्रमित करने का कोई इरादा नहीं था।[184]

राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री के बीच पत्र-व्यवहार के मामले में प्रधान मंत्री द्वारा सदन को अभिकथित रूप से भ्रमित किए जाने से उत्पन्न एक विशेषाधिकार का मामला सदस्यों द्वारा सदन में उठाया गया था जिसका निपटारा सभापति द्वारा संविधान के उपबंधों , ब्रिटेन और भारत के पूर्व निर्णयों के संदर्भ में किया गया था। अन्त में उन्होंने यह टिप्पणी की थी: ''सभापीठ अपने प्रति पवित्र विश्वास को तभी बनाये रख सकेगी जब वह क्षणिक उत्तेजना की उपेक्षा करते हुए संविधान निर्माताओं द्वारा दिखाए गये पथ का अनुसरण करे।''[185]

बोफोर्स सौदे में कोई बिचौलिया न होने के विषय में प्रधान मंत्री द्वारा अभिकथित रूप से भ्रामक वक्तव्य दिये जाने से संबंधित एक और मामले में सभापति ने प्रधान मंत्री से टिप्पणियां मांगने के पश्चात् सदन में एक ब्यौरे-वार व्यवस्था दी थी और माना था कि प्रधान मंत्री का वक्तव्य न तो गलत था और न ही वह सदन को जानबूझकर भ्रमित करने के लिए दिया गया था और इसलिए उनके विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन के आरोप की पुष्टि नहीं होती।[186]

ऐसे मामले जिनमें विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता

सदस्यों की डाक को बीच में रोकना

दो सदस्यों द्वारा 26 अगस्त, 1981 को विशेषाधिकार के उल्लंघन की दो सूचनाएं दी गई थीं जिनमें यह आरोप लगाया गया था कि उनकी डाक बीच में रोकी जा रही है, खोली जा रही है और सेंसर की जा रही है जिससे उनके संसदीय कर्त्तव्यों के निष्पादन में बाधा पड़ी है। सभापति ने अपनी व्यवस्था में (जो उपसभापति द्वारा), भारतीय डाकघर अधिनियम, 1898 की धारा 26(1) का उल्लेख किया जिसमें लोक-आपात की स्थिति या सार्वजनिक सुरक्षा या शांति के हित में वस्तुओं को बीच में रोकने या निरुद्ध करने के लिए सरकार को प्राधिकृत किया गया है और उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि ''इस धारा में'' धारा के प्रवर्तन से किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग को छूट प्रदान नहीं की गई है। चूंकि एक अकेले व्यक्ति द्वारा विशिष्ट विशेषाधिकारों हेतु कोई दावा नहीं किया जा सकता अत: सदन या संसद् के सदस्यों की हैसियत से यह दावा किया जा रहा है। यह बात निश्चित है कि इस देश के कानूनों के लागू होने के मामले में संसद्-सदस्यों को कोई विशेष दर्जा प्राप्त नहीं है। लोक सभा और अन्यत्र के विनिर्णयों का हवाला देने के पश्चात् सभापति ने यह व्यवस्था दी कि इस विषय में विशेषाधिकार का कोई मामला नहीं बनता। तथापि, उन्होंने टिप्पणी की कि:

...यदि यह साबित हो जाता है कि कोई असद्भावनापूर्ण कार्यवाही की गई है या इस सदन के माननीय सदस्यों के विधिसम्मत कर्त्तव्यों में कोई हस्तक्षेप किया गया है, तो उस समिति में यह व्यवस्था बचाव नहीं कर सकेगी। मैं माननीय लोक सभा अध्यक्ष की टिप्पणियों को भी सादर दोहराता हूं ''मैं इस विषय के समापन से

> पहले एक टिप्पणी करना चाहूंगा और वह टिप्पणी, मेरे कार्यालय जिसमें लोक सभा सचिवालय भी सम्मिलित है, द्वारा सदस्यों को भेजे गये पत्रादि के बारे में है। मैं आशा करता हूं कि संबंधित प्राधिकारी यह महसूस करेंगे कि ऐसे पत्रादि की ओर सेंसरकर्ता-प्राधिकारियों का ध्यान आकर्षित नहीं होगा।'' यही बात आवश्यक परिवर्तनों के साथ इस सदन में लागू होगी।[187]

कुछ वर्षों के पश्चात् जब किसी सदस्य द्वारा ऐसा ही मामला पुन: उठाया गया जिसमें सदस्य ने यह शिकायत की थी कि तमिलनाडु के मुख्य सचिव ने संबंधित सदस्य की डाक वस्तुओं को सेंसर किए जाने का आदेश दिया है तब सभापति ने अपनी उपर्युक्त टिप्पणियों को ही दोहराया था।[188]

आरोप-पत्र में सदस्यों को बदनाम करने का प्रयास

कुछ सदस्यों ने विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचनाएं दी थीं जिनमें यह कहा गया था कि रामस्वरूप गुप्तचरी के मामले में, जिसका व्यापक प्रचार हुआ था, दायर किए गये आरोप-पत्र में उनके नामों का उल्लेख किया गया है जिससे उनकी सार्वजनिक छवि बिगड़ी है और उनके संसदीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में बाधा डाली गई है। यह भी दावा किया गया था कि आरोप-पत्र में उनको बदनाम करने के इरादे से, सदस्यों के रूप में उनके आचरण पर प्रश्नचिह्न लगाया गया था। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि अभियुक्त द्वारा अपने संदिग्ध कामकाज को स्वत: बढ़ाने हेतु संबंध स्थापित करने के लिए उसके द्वारा अपनाई गई कार्य-प्रणाली का उल्लेख करते हुए आरोप-पत्र में उनके नाम का उल्लेख किए जाने मात्र से यह प्रकट नहीं होता है कि संबंधित संसद्-सदस्यों ने कोई असद्भावनापूर्ण कार्य किया है। इसके अलावा इन संसद्-सदस्यों को न तो सह-अभियुक्त बनाया गया है और न साक्षी ही बनाया गया है। संबंधित सदस्यों ने सदन में वैयक्तिक स्पष्टीकरण देकर अपनी स्थिति पहले ही स्पष्ट कर दी थी इसलिए सभापति ने मामले को वहीं पर समाप्त कर दिया।[189]

दल से संबंधित मामले

सुस्थापित परिपाटी के अनुसार, दल की बैठकों में जो कुछ कहा जाता है सभापति उस पर ध्यान नहीं देते। सदस्यों द्वारा दल की बैठकों से संबंधित मामलों का उल्लेख किए जाने या उन्हें उठाये जाने के संबंध में दी गई कुछ व्यवस्थाएं नीचे दी जाती हैं:

> एक सदस्य ने इस आशय के एक समाचार का उल्लेख किया था कि वित्त उपमंत्री (श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा), जिनके विरुद्ध पिछले दिन सदन में प्रश्नकाल के दौरान कुछ आरोप लगाये गये थे, इस मामले को कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में उठायेंगी। सदस्य चाहते थे कि मंत्री महोदया इस संबंध में सदन में एक वक्तव्य दें। इस पर सभापति ने यह व्यवस्था दी थी कि दल के भीतर जो कुछ हुआ है उसमें उनकी दिलचस्पी नहीं है। यदि सार्वजनिक वजह से मंत्री, जनहित में सदन में वक्तव्य नहीं देता और संसदीय दल की बैठक में वक्तव्य देता है तो सभापीठ इस संबंध में उनसे पूछताछ करेगी।[190]

> एक सदस्य ने सभापति का ध्यान इस समाचार की ओर आकर्षित किया कि कांग्रेस के दो सदस्यों द्वारा, सदन में भाषण देते हुए सरकार की कटु समालोचना करने पर प्रधान मंत्री और अन्य मंत्रियों द्वारा उन्हें डांटा और डराया गया था। सदस्य का विचार था कि इससे उक्त सदस्यों के सामान्य संसदीय कृत्यों में हस्तक्षेप किया गया है और इसलिए यह विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनता है। सभापति ने यह टिप्पणी की थी, ''मैं नहीं समझता कि किसी दल की बैठक में घटित सामान्य घटनाओं को विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनाया जा सकता है।''[191]

'बिरला ग्रुप ऑफ कम्पनीज' के मामले में हुए वाद-विवाद के संबंध में उप-प्रधानमंत्री की आलोचना करते हुए, किसी सदस्य द्वारा की गई कतिपय टिप्पणियों के लिए कांग्रेस पार्टी द्वारा उस सदस्य के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही किए जाने के प्रस्ताव के समाचार के बारे में एक अन्य सदस्य ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति मांगी थी। इसपर सभापति ने अपनी सहमति नहीं दी थी।[192]

राष्ट्रपति के चुनाव में एक सदस्य द्वारा उक्त चुनाव में अपनी अन्तरात्मा के अनुसार मतदान करने के अपने इरादे की सार्वजनिक घोषणा कर दिये जाने पर उसे डराये जाने के संबंध में एक अन्य सदस्य ने कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष और महासचिव के विरुद्ध एक विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति मांगी थी। उपसभापति ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति नहीं दी।[193]

एक सदस्य द्वारा इस्पात मंत्रालय से संबंधित एक मामले में सदन में प्रश्न पूछे जाने पर उसके दल द्वारा उस सदस्य को अभिकथित रूप से उत्पीड़ित किए जाने के संबंध में एक अन्य सदस्य ने विशेषाधिकार का मामला उठाने के लिए अनुमति मांगी थी। संबंधित सदस्य ने उक्त आरोप का खण्डन किया और उपसभापति ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति नहीं दी।[194]

एक सदस्य द्वारा कांग्रेस संसदीय दल के चुनावों का उल्लेख किए जाने पर, सभापति ने यह व्यवस्था दी थी, ''यह दल का मामला है; दल की अपनी स्वायत्तता होती है और वह जो कुछ चाहे कर सकता है। यह मामला हमारे क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता और हम इस बारे में कुछ नहीं कर सकते।'' (संदर्भ यह था कि प्रधान मंत्री ने कांग्रेस संसदीय दल के लिए चुने जाने वाले सदस्यों की एक सूची परिचालित की थी।)[195]

आश्वासनों का पूरा न किया जाना

एक सदस्य ने विशेषाधिकार का यह मामला उठाने की अनुमति मांगी थी कि वित्त मंत्री ने कम्पनी बोर्ड के गठन के मामले में सदन को दिए गए अपने आश्वासन की अवहेलना की है। उपसभापति ने, संगत कार्यवाही का अध्ययन करने और मामले की जांच करने के पश्चात्, इस मामले को सदन में उठाए जाने के लिए अनुमति देने से इन्कार कर दिया।[196]

संसद् भवन के समक्ष जुलूस पर पाबंदी

एक सदस्य ने दिल्ली के उपराज्यपाल द्वारा दिए गये उस वक्तव्य के संबंध में 14 नवम्बर, 1966 को विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति मांगी जिसमें उन्होंने यह कहा था कि संसद् से दो मील के घेरे में जुलूस निकाले जाने पर पाबंदी लगा दी जायेगी। सदस्य ने यह दावा किया था कि उपराज्यपाल को ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है और इस तरह उन्होंने संसद् और उसके सदस्यों के विशेषाधिकार का उल्लंघन किया है। सदन के नेता ने स्पष्ट किया कि उपराज्यपाल कानून और व्यवस्था के प्रभारी हैं और उन्होंने जो कुछ कहा है वह कानून और व्यवस्था के मामले से संबंधित है। उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा है जिससे संसद्, अपने कृत्यों के निष्पादन में बाधित हो या किसी व्यक्ति को संसद् तक पहुंचने से रोका जाये। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन उन्हें जुलूस पर पाबंदी लगाने का अधिकार प्राप्त है। सभापति ने विशेषाधिकार का मामला उठाने की अनुमति नहीं दी।[197]

राज्य सभा में उठाये गये विशेषाधिकार के कुछ विशिष्ट मुद्दे

सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के कार्यवृत्तों को कथित रूप से तोड़-मरोड़ कर सभा पटल पर रखा जाना

राज्य सभा के एक सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचनायें दी गयी थीं जिसने सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के एक सदस्य की हैसियत से, समिति के 47वें प्रतिवेदन से संबंधित उसकी बैठकों

के कार्यवृत्तों की एक प्रति राज्य सभा के पटल पर रखी थी। यह आरोप लगाया गया था कि कार्यवृत्त तथ्यों के अनुसार सही नहीं हैं और वे समिति की बैठक की कार्यवाही को सही-सही प्रतिबिम्बित नहीं करते तथा यह समिति को दी गयी महत्त्वपूर्ण सूचना को पूर्णतया तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने और तथ्य को छिपाने के बराबर है। सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के अध्यक्ष के विरुद्ध भी विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी गयी थी। उसपर सभापति ने यह कहा कि जिस सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने की सूचनायें दी गयीं थीं उसने इस सभा में समिति की ओर से पूर्णतया शासकीय कार्य का निष्पादन किया था और कार्यवृत्त को समिति के अध्यक्ष द्वारा अधिप्रमाणित किया गया था। अत:, सदस्य को कार्यवृत्त में अशुद्धियों के लिये, यदि कोई हों, व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। सभापति ने इस मामले में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति देने से इंकार कर दिया।[198]

सदन में जानकारी का प्रकट न किया जाना

ऐसे दो अवसर आए हैं जब सदन में चर्चा के दौरान किसी मंत्री द्वारा किसी जानकारी के प्रकट न किए जाने अथवा किसी मंत्री द्वारा सदन में कथित रूप से जानकारी देने से बचने के संबंध में प्रश्न उठाए गए थे। एक मामले में सभापीठ ने यह व्यवस्था दी थी कि उसमें **प्रथम दृष्टया** विशेषाधिकार के उल्लंघन का कोई मामला नहीं बनता और दूसरे मामले में संबंधित मंत्री द्वारा स्थिति को स्पष्ट कर दिए जाने के बाद उस मामले को बन्द कर दिया गया।[199]

सदस्यों का निरादर

राष्ट्रपति भवन में एक समारोह के दौरान सदस्यों के निरादर के संबंध में राज्य सभा में विशेषाधिकार का एक मुद्दा उठाया गया था। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्थिति को स्पष्ट कर दिया था और किसी भी सदस्य को वहां से निष्कासित किए जाने पर खेद प्रकट किया था। सभापति ने यह कहकर मामले को समाप्त कर दिया था कि प्रधान मंत्री यह कह चुके हैं कि किसी भी संसद्-सदस्य का कभी भी निरादर करने अथवा उसके साथ अशिष्टता का व्यवहार करने की कोई मंशा नहीं रही है और उनके साथ अति शिष्टता एवं आदर के साथ ही पेश आना चाहिए।[200]

एक अन्य अवसर पर एक मंत्री द्वारा सभापीठ की अनुमति लिए बिना चर्चा के दौरान सदन छोड़कर चले जाने के संबंध में आपत्ति की गई थी। सदन के नेता ने उन परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए सरकार की ओर से क्षमा मांग ली थी और खेद प्रकट कर दिया था। इस मामले को वहीं समाप्त कर दिया गया था।[201]

राज्य सभा के सदस्यों को राज्य सरकार की कुछ समितियों में शामिल न किया जाना

9 अगस्त, 1983 को कई सदस्यों ने उड़ीसा सरकार की कुछ समितियों में राज्य सभा के सदस्यों को शामिल न किए जाने से संबंधित एक मामला सदन में उठाया था। उड़ीसा सरकार द्वारा स्थिति को स्पष्ट कर दिए जाने और यह निर्णय लेने के पश्चात् कि राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य के नामिती को उस समिति के सदस्य के रूप में शामिल कर लिया जाए जिसमें से पूर्ववर्ती सदस्यों को राज्य सभा के सदस्य का प्रादेशिक चुनाव क्षेत्र न होने के कारण शामिल नहीं किया गया था, सभापति ने कहा कि इस मामले पर सदन में और आगे चर्चा नहीं होनी चाहिए।[202]

नगर निकाय द्वारा विशेषाधिकार का उल्लंघन

राज्य सभा में पहली बार नगर निकाय (पुणे नगर निगम) के विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की एक शिकायत की गई थी। इस निकाय ने पुणे दंगों के संबंध में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के दौरान राज्य सभा के एक

सदस्य द्वारा दिए गए एक कथित वक्तव्य की निंदा करते हुए एक स्थगन प्रस्ताव स्वीकृत किया था। उस स्थगन प्रस्ताव पर पार्षदों द्वारा दिए गए भाषणों की प्रतियां मंगवाई गईं और सभापति ने इस बात के प्रति संतुष्ट हो जाने के बाद कि **प्रथम दृष्टया** विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनता है, सदस्य को प्रश्न उठाने के लिए अपनी सहमति दे दी। किन्तु, ऐसा करते समय सदस्य ने कहा कि यदि सभापति कुछ टिप्पणी करें तो वह संतुष्ट हो जाएंगे। सदन के नेता भी इस पर सहमत हो गये। उसके बाद सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि नगर निगम से यह आशा की जाती है कि सदन अथवा उसके किसी भी सदस्य की आलोचना करने से पहले वह (तथ्यों को सुनिश्चित करते हुए) उचित ध्यान रखें। तथापि, सभापति ने कहा कि सदन को कार्यवाही करने के लिए परेशान न किया जाये और यह कि वह दोनों दिन की कार्यवाही की रिपोर्ट निगम को भेज रहे हैं। ताकि वह उपयुक्त संशोधन कर सकें। सदन सभापति के निर्णय से सहमत हो गया।[203]

राष्ट्रपति पर आक्षेप

27 अप्रैल, 1987 को कुछ सदस्यों ने तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह पर लगाए गए आक्षेपों, जैसा कि उससे एक दिन पहले के एक समाचार-पत्र में कहा गया था, के बारे में सदन में एक मामला उठाया था। सभापति ने इस मामले को कुछ मुद्दों की जांच हेतु विशेषाधिकार समिति को भेज दिया। तथापि, समिति ने यह निर्णय किया कि इस मामले को बंद समझा जाए और उसे वहीं समाप्त कर दिया जाए।[204]

इससे पहले भी एक अवसर पर विशेषाधिकार समिति ने एक साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित कुछ लेखों की जांच की थी, जिनमें राष्ट्रपति पद पर आसीन व्यक्ति की अवमानना की गई थी। किन्तु समिति ने इस बात पर विस्तार से विचार नहीं किया कि क्या राष्ट्रपति पर लगाए गए आक्षेप संसद् पर लगाए गए आक्षेप माने जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप उसके विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला बनता हो।[205]

औचित्य का उल्लंघन

बजट की पूर्व-संध्या पर डाक दर में वृद्धि किया जाना

19 फरवरी, 1982 को जब संचार मंत्रालय में उपमंत्री ने डाक दर में वृद्धि किये जाने के संबंध में कतिपय अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखने की अनुमति मांगी तो उस समय इस तरह के मुद्दे उठाये गये कि ऐसा करना संसद् की अनदेखी करना तथा उसके प्राधिकार को कम करना है। सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह व्यवस्था दी कि सरकार को भारतीय तार अधिनियम के अधीन दर में वृद्धि करने की शक्ति और प्राधिकार प्राप्त है। इसमें वैधता का कोई प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है; यह तो औचित्य का प्रश्न है। अत: उन्होंने यह विचार प्रकट किया : ''...औचित्य का तकाज़ा है कि यदि कर की दरों में इस प्रकार की कोई वृद्धि की जाती है, तो ऐसा बजट सत्र की पूर्व-संध्या पर नहीं किया जाना चाहिये बल्कि ऐसा कदम काफी पहले उठाया जाना चाहिये ताकि लोग यह जान जायें कि यह पेश किये जाने वाले बजट का हिस्सा नहीं है।''[206]

बजट की पूर्व-संध्या पर कतिपय मदों को सीमा-शुल्क से मुक्त रखा जाना

25 फरवरी, 1986 को, जब सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 के अधीन बयालीस अधिसूचनाओं के एक सेट को राज्य सभा के पटल पर रखे जाने की अनुमति मांगी गयी थी तो उस समय सदस्यों ने बजट की

पूर्व-संध्या पर कतिपय मदों को सीमा-शुल्क के भुगतान से मुक्त रखे जाने के औचित्य के संबंध में एक मामला उठाया था। वित्त मंत्री ने यह तर्क दिया कि उनमें से कुछ अधिसूचनायें तो मात्र शुल्क दरों से छूट की अवधि बढ़ाये जाने और/या उन्हें आगे जारी रखे जाने से संबंधित हैं जोकि ऐसी अधिसूचनायें जारी न किये जाने की स्थिति में समाप्त हो जायेंगी। सभापति ने अपनी व्यवस्था में यह विचार प्रकट किया कि यदि उपर्युक्त तथ्यात्मक रूप से सही है तो ऐसे मामलों में औचित्य का कोई उल्लंघन नहीं होगा। इसके दूसरी तरफ, यदि इन अधिसूचनाओं से कर में वृद्धि या कमी किये जाने जैसे राजस्व निहितार्थ रहे हों, तो बजट की पूर्व-संध्या पर ऐसी अधिसूचनाओं का जारी किया जाना संसदीय औचित्य के सिद्धान्तों का उल्लंघन होगा। तद्नुसार, सभापति ने यह व्यवस्था दी थी कि:

(क) सीमा-शुल्क अधिनियम के अनुसरण में जारी की गयी अधिसूचनायें वैध हैं;

(ख) ऐसे समय में, जब संसद् का सत्र न चल रहा हो, अधिसूचनाओं का जारी किया जाना और उन अधिसूचनाओं को अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की सिफारिशों के अनुसार सत्र के सात दिन के भीतर सभा पटल पर रखा जाना वैध तथा उचित है;

(ग) किसी विद्यमान शुल्क दर की मियाद को बढ़ाने वाली औपचारिक किस्म की अधिसूचनायें , जिनका कोई नया राजस्व निहितार्थ नहीं हो, वैध तथा उचित हैं; और

(घ) बजट की पूर्व-संध्या पर शुल्क ढांचे में वृद्धि या कमी किये जाने जैसे राजस्व निहितार्थ वाली अधिसूचनायें संसदीय औचित्य के विरुद्ध हैं।

जहां तक इन अधिसूचनाओं के गुणावगुण या विषय-वस्तु का संबंध है, उन्होंने कहा कि उनकी लोक लेखा समिति द्वारा जांच-पड़ताल की जा सकती है जैसाकि 1981 में किया गया था।[207]

तद्नुसार, लोक लेखा समिति के पास एक मामला भेजा गया था। सभापति ने लोक लेखा समिति की टिप्पणियों के बारे में सदन को जानकारी दी और इसकी इस आशय की निष्कर्षात्मक टिप्पणियों की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया कि अधिसूचनाओं की बाद में संसद् द्वारा स्वीकृति लिया जाना कराधान प्रस्तावों, विशेषकर जब वे स्वीकृत बजट से हटकर हों, के संबंध में पूर्व बहस तथा चर्चा का अनुकल्प नहीं था। अन्त में, सभापति ने यह विचार प्रकट किया, ''मैं आशा करता हूं कि सरकार इसपर यथोचित ध्यान देगी और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगी कि राजस्व निहितार्थों वाली अधिसूचनाओं को जारी किये जाने का कम से कम सहारा लिया जायेगा।''[208]

बजट की पूर्व-संध्या पर राजस्व निहितार्थों वाली अधिसूचनाओं का जारी किया जाना

एक बार फिर 25 फरवरी, 1987 को, जब सीमा-शुल्क और उत्पाद-शुल्क से संबंधित सत्रह अधिसूचनाओं को सभा पटल पर रखा जा रहा था उस समय सभापति की उपर्युक्त व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए बजट की पूर्व-संध्या पर उन अधिसूचनाओं को जारी किये जाने के औचित्य का प्रश्न उठाया गया था। (इसके पिछले ही दिन उसी तरह की इकसठ अधिसूचनाओं को भी सभा पटल पर रखा गया था)। सभापति ने निदेश दिया कि राज्य सभा के पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति को अधिसूचनाओं (कुल मिलाकर अठहत्तर) की वास्तविक स्थिति की जांच-पड़ताल करनी चाहिए।[209] समिति ने तद्नुसार इस मामले पर विचार किया और 9 अक्तूबर, 1987 को अपना प्रतिवेदन सभापति को प्रस्तुत कर दिया। समिति ने साठ अधिसूचनाओं के जारी किये जाने के औचित्य को मान्य ठहराया था। जहां तक अठारह अन्य अधिसूचनाओं का संबंध है, समिति ने यह पाया कि उस समय ऐसी परिस्थितियां विद्यमान नहीं थीं कि

उन अधिसूचनाओं को जारी करना अत्यावश्यक हो और उन अधिसूचनाओं का जारी किया जाना उस समय तक रोके रखा जाना चाहिये था, जब तक कि संसद् को उन पर विचार करने का अवसर प्राप्त न हो जाये। समिति ने इस संबंध में कुछ अन्य सामान्य सुझाव भी दिये थे।[210] सभापति ने 28 मार्च, 1988 को दी गयी अपनी व्यवस्था में लोक लेखा समिति की उपर्युक्त टिप्पणियों को दोहराया था और यह कहा था कि सरकार सभा पटल पर रखे गये पत्रों संबंधी समिति द्वारा दिये गये सुझावों पर यथोचित ध्यान देगी और यह सुनिश्चित करेगी कि अधिसूचनाओं के जारी किये जाने के मामले में यह पूर्ववर्ती सभापति द्वारा 4 मार्च और 11 नवम्बर, 1986 को दी गयी व्यवस्था के तहत निर्धारित मानदण्ड का पालन करेगी।[211]

जब संसद का सत्र चल रहा हो तो सदन से बाहर नीतिगत/महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया जाना/ घोषणाएं किया जाना

कई बार सदस्यगण, जब संसद् का सत्र चल रहा हो, सरकार द्वारा सदन के बाहर महत्त्वपूर्ण घोषणाएं किए जाने/नीतिगत वक्तव्य दिये जाने के संबंध में सदन के अवमान का प्रश्न उठाते हैं। ऐसे सभी मामलों में सामान्यत: यह माना गया है कि 'यदि जनहित के मामलों से संबंधित वक्तव्य सर्वप्रथम सदन में नहीं दिए जाते तो इसमें सदन के विशेषाधिकार का कोई मामला नहीं बनता। किन्तु किसी मंत्री के लिए यह औचित्य का उल्लंघन हो सकता है यदि वह उस समय सदन से बाहर कोई वक्तव्य दे जबकि सदन का सत्र चल रहा हो।' यह भी माना गया है कि यदि सदन का सत्र चल रहा हो तो नीतिगत वक्तव्यों को प्रेस में अथवा जनता के बीच जारी करने से पहले उन्हें सर्वप्रथम सदन में ही दिया जाना चाहिए किन्तु यदि ऐसे वक्तव्य सरकार की घोषित नीति के विरुद्ध नहीं हैं तो मंत्रियों को सदन से बाहर ऐसे वक्तव्य देने से रोका नहीं जा सकता।

> जब मंत्री सरकारी क्षेत्र में कारों के विनिर्माण के संबंध में एक वक्तव्य देने के लिए खड़े हुए तो एक सदस्य ने उन्हें यह कहते हुए टोका कि यह वक्तव्य पहले से ही समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है और इस प्रकार सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन किया गया है। कुछ चर्चा करने के बाद उपसभापति ने विशेषाधिकार के प्रश्न को अस्वीकार करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी की कि:
>
> > जहां तक संसदीय प्रक्रिया का संबंध है, यदि महत्त्वपूर्ण नीतिगत मामलों अथवा नीतिगत निर्णयों के संबंध में कोई सूचना समाचार-पत्र में प्रकाशित हो जाती है तो यह निश्चित है कि इससे सदन के विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं होता...यह एक तरह से बहुत ही अनुचित बात है कि सदन में जानकारी दिये जाने से पहले ही कोई बात समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो जाए अथवा ऐसी किसी बात की सूचना प्रेस को पहले ही मिल जाए, यह एक बहुत ही अनुचित बात मानी जाएगी।...इसलिए, यदि किसी बात की जानकारी सदन को दिये जाने से पूर्व ही प्रेस को हो जाती है, तो संसदीय प्रक्रिया के अनुसार इसे निस्सन्देह विशेषाधिकार का उल्लंघन कभी भी नहीं माना जा सकता किन्तु यह बहुत ही अनुचित बात होगी। यह शिष्टाचार का उल्लंघन तो हो सकता है किन्तु विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं।[212]
>
> इसी प्रकार, देश में स्कूटरों के विनिर्माण के संबंध में मंत्री के वक्तव्य से संबंधित एक मामले में मंत्री ने कहा कि उक्त वक्तव्य मात्र उस निर्णय के कार्यान्वयन के बारे में है जो अक्तूबर, 1969 में लिया गया था और जिसके बारे में प्रेस को और देश के प्रत्येक व्यक्ति को जानकारी है। उपसभाध्यक्ष ने मंत्री जी के तर्क को यथावत् मानते हुए कहा था कि यद्यपि इसमें विशेषाधिकार का कोई उल्लंघन अथवा सभा का अवमान अंतर्ग्रस्त नहीं है, तथापि यह उचित रहेगा कि आगे से इसमें सतर्कता बरती जाए जिससे ऐसी बातों की पुनरावृत्ति न हो तथा सरकार ऐसे मामलों में पहले से ज्यादा सावधान रहे।[213]
>
> संसद् का सत्र चलते संसद् के बाहर प्रेस आयोग के गठन के बारे में घोषणा करने से संबंधित एक मामले में सभापति ने यह व्यवस्था दी थी:
>
> > ...यदि सरकार द्वारा कोई महत्त्वपूर्ण घोषणा की जानी है तो यह घोषणा सदन में यथासंभव शीघ्र उस समय

की जानी चाहिए जब सदन का सत्र चल रहा हो। मुझे आशा है कि भविष्य में इसका पालन किया जाएगा... यदि कोई नीतिगत वक्तव्य हो तो मंत्री को इसे सदन से बाहर नहीं देना चाहिए।[214]

एक अन्य मामले में विशेषाधिकार का मुद्दा शनिवार के दिन सदन से बाहर, जबकि सभा का सत्र चल रहा था, कुछ नीतिगत घोषणाएं किए जाने से संबंधित था। संबंधित मंत्री ने तर्क दिया कि वे घोषणाएं नीतिगत वक्तव्य नहीं हैं, वे तो प्रशासनिक निर्णय हैं। सभापति ने इस निर्धारित प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए कहा कि नीतिगत वक्तव्यों को प्रेस में या जनता के बीच जारी करने से पहले उन्हें सर्वप्रथम सदन में ही दिया जाना चाहिए जबकि उसका सत्र चल रहा हो और यह कि यदि ऐसे वक्तव्य सरकार की घोषित नीति के विरुद्ध नहीं हैं तो मंत्रियों को ये वक्तव्य सदन से बाहर देने से रोका नहीं जा सकता। इसलिए, इस मुद्दे पर सवाल यह था कि मंत्री द्वारा की गई घोषणाएं क्या किसी नई नीति की घोषणा थी, नीति परिवर्तन की घोषणा थी या घोषित नीति के विरुद्ध की गई घोषणा थी। इस सन्दर्भ में विचार करने के बाद सभापति ने यह माना कि मंत्री जी की घोषणाओं में स्वीकार्य औचित्य के उल्लंघन का कोई मामला अन्तर्ग्रस्त नहीं है। किन्तु जहां तक मंत्री के इस तर्क का संबंध है कि ये घोषणाएं चूंकि प्रशासनिक निर्णय से संबंधित थीं अत: इसमें औचित्य का कोई उल्लंघन नहीं है, इस मामले में सभापति ने यह टिप्पणी की:

''ऐसे किसी सामान्य तर्क को संसद् के पूर्ववर्ती निर्णयों से उचित नहीं ठहराया जा सकता। हो सकता है कि कुछ प्रशासनिक निर्णयों में मौजूदा नीति में परिवर्तन या उसके अतिक्रमण का मामला अन्तर्ग्रस्त हो और इस प्रकार की घोषणाएं सर्वप्रथम सदन में ही की जानी हों।'' किन्तु उन्होंने इस बात को पहले से ही मानते हुए कि मंत्री की जिन घोषणाओं पर आपत्ति की गई थी वे नीतिगत वक्तव्य नहीं थे, उपर्युक्त मुद्दे पर अपना कोई निर्णय नहीं सुनाया।[215]

विशेषाधिकार के प्रश्नों से निपटने संबंधी प्रक्रिया

सभापति की पूर्वानुमति

कोई भी सदस्य सभापति की सहमति से कोई ऐसा प्रश्न उठा सकता है जिसमें किसी सदस्य, सदन अथवा उसकी किसी समिति के विशेषाधिकार का उल्लंघन अंतर्ग्रस्त हो।[216] जो सदस्य विशेषाधिकार का प्रश्न उठाना चाहता है उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह लिखित में उसकी सूचना उस दिन की बैठक प्रारम्भ होने से पूर्व, जिस दिन उसका प्रश्न उठाने का विचार हो, महासचिव को दे।[217] यदि विशेषाधिकार का प्रश्न किसी दस्तावेज पर आधारित हो तो सूचना के साथ वह दस्तावेज भी संलग्न किया जाना चाहिए।[218] सूचना मिलने पर सभापति द्वारा मामले पर विचार किया जाता है जो विशेषाधिकार के प्रश्न को सदन में उठाए जाने हेतु अपनी सहमति दे भी सकता है अथवा सहमति देने से इन्कार भी कर सकता है।

कोई मामला वास्तव में विशेषाधिकार के उल्लंघन अथवा सदन के अवमान का मामला है या नहीं— इस प्रश्न का निर्णय पूर्णतया सदन पर निर्भर करता है। सभापति किसी मामले को सदन में उठाए जाने हेतु अपनी सहमति देने में केवल इस बात पर विचार करता है कि क्या मामला और जांच किये जाने के लिए उपयुक्त है और क्या इसे सदन के समक्ष लाया जाए अथवा नहीं। विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने का अधिकार दो शर्तों से अभिशासित होता है अर्थात् (i) प्रश्न हाल ही में हुई किसी विशिष्ट घटना तक सीमित होगा; और (ii) मामले में सदन का हस्तक्षेप अपेक्षित होगा।[219] इस संबंध में निर्णय लेने से पूर्व कि विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाए जाने वाले प्रस्तावित मामले में सभा का हस्तक्षेप आवश्यक है अथवा नहीं और क्या उसे सभा में उठाने की सहमति दी जाए अथवा नहीं, सभापति आरोपित व्यक्ति को उसके समक्ष अपना पक्ष स्पष्ट करने का अवसर दे सकता है। सभापति यदि उपयुक्त समझे तो वह विशेषाधिकार के प्रश्न की ग्राह्यता के संबंध में निर्णय लेने से पूर्व सदस्यों के विचार सुन सकता है।[220]

यदि कोई समाचार-पत्र कार्यवाही के कथित रूप से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने या गलत ढंग से प्रस्तुत करने अथवा सदन या इसके सदस्यों के संबंध में निन्दात्मक टिप्पणियां करने के कारण अंतर्ग्रस्त है तो सभापति आरंभ में ही सदन में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाए जाने हेतु सहमति देने से पूर्व ही उस समाचार-पत्र के संपादक को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दे सकता है और सामान्यत: अवसर दे भी देता है। सभापति सामान्यतया संबंधित सम्पादक अथवा संवाददाता द्वारा खेद व्यक्त किए जाने अथवा गलती सुधारते हुए दूसरा लेख प्रकाशित किए जाने पर विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने हेतु अपनी सहमति नहीं देता। (पीछे **देखिए**)

जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है, सदस्यों ने पुलिस द्वारा स्वयं उनके साथ बुरा व्यवहार किये जाने अर्थात् पुलिस प्राधिकारियों द्वारा कथित रूप से अपशब्द कहे जाने, दुर्व्यवहार किये जाने अथवा उनके कार्य में बाधा पहुंचाये जाने के संबंध में विशेषाधिकार के प्रश्न उठाए हैं। ऐसे मामलों में, यदि सभापति संतुष्ट हों तो वह सदस्यों को सदन में विशेष उल्लेख[221] अथवा व्यक्तिगत स्पष्टीकरण[222] के माध्यम से वक्तव्य देने की अनुमति दे सकता है। तत्पश्चात्, संबंधित मंत्री को तथ्यों का पता लगाकर सभापति अथवा सदन को उनसे अवगत करवाने का अवसर दिया जा सकता है।[223] सभापति अथवा सदन द्वारा तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मामले पर निर्णय लिया जा सकता है।[224]

सदन की अनुमति

जब सभापति अपनी सहमति दे दे और यह मान ले कि चर्चा के लिए प्रस्तावित विषय नियमानुकूल है तब वह संबंधित सदस्य को विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने के लिए सदन की अनुमति लेने को कहता है। संबंधित सदस्य को मुद्दे से संगत एक संक्षिप्त वक्तव्य देने की अनुमति दी जाती है। विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति प्रश्न-काल के बाद और कार्यावलि का कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व मांगी जाती है।[225] परन्तु, यदि सभापति विषय की अत्यावश्यकता के संबंध में संतुष्ट हो जाए तो वह प्रश्नों के निपटाए जाने के बाद बैठक के दौरान किसी भी समय विशेषाधिकार का प्रश्न उठाए जाने की अनुमति दे सकता है।[226]

> एक सदस्य को एक दिन मध्याह्न पूर्व पूछे गए अनुपूरक प्रश्न के उत्तर (भारत और यूरोपीय आर्थिक समुदाय के बीच व्यापार संबंधों से संबंधित तारांकित प्रश्न संख्या 183) से उत्पन्न विशेषाधिकार का एक मामला उठाने के लिए आधे घंटे (म०प० 2.56 से म० प० 3.26 तक) की अनुमति दी गई थी। किन्तु उपसभापति ने इसे विशेषाधिकार प्रस्ताव के रूप में नहीं माना था।[227]

> कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों में यदि सभापति का यह मत हो कि चर्चा के लिए प्रस्तावित विषय नियमानुकूल नहीं है, तो, यदि वह आवश्यकता समझे, उस विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना को पढ़कर सुना सकता है और कह सकता है कि वह सहमति देने से इन्कार करता है।[228]

जब सभापति की सहमति से मुद्दा उठाया जाता है तब सभापति पूछता है कि क्या सदस्य को प्रश्न उठाने के लिए सदन की अनुमति प्राप्त है। यदि कोई भी असहमति प्रकट नहीं करता है तो यह मान लिया जाता है कि अनुमति प्रदान कर दी गई है।[229] यदि अनुमति दिए जाने पर आपत्ति की जाती है तो सभापति उन सदस्यों से, जो अनुमति दिए जाने के पक्ष में हों, अपने-अपने स्थान पर खड़े होने के लिए कहता है और तद्नुसार यदि कम से कम पच्चीस सदस्य खड़े हो जाते हैं तो सभापति सूचित करता है कि अनुमति दी जाती है,[230] अन्यथा वह उस सदस्य को सूचित करता है कि उसे सदन की अनुमति प्राप्त नहीं है।[231]

प्रश्न पर विचार किया जाना

यथोपरोक्त अनुमति दिए जाने के बाद सदन प्रश्न पर विचार कर सकेगा और निर्णय कर सकेगा,[232] अथवा उस सदस्य द्वारा, जिसने विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया है या किसी अन्य सदस्य द्वारा किए गए प्रस्ताव पर उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप सकेगा।[233] सामान्य प्रक्रिया यह है कि मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाता है और सदन तब तक अपना निर्णय नहीं देता जब तक समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत न कर दी जाए। कई अवसरों पर सदन की औपचारिक अनुमति अथवा प्रस्ताव के बिना ही सदन मुद्दे को विशेषाधिकार समिति को सौंपने के लिए सहमत हो गया।[234]

सदस्यों के विरुद्ध शिकायतें

जब किसी सदस्य द्वारा किसी दूसरे सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार के कथित उल्लंघन अथवा सदन का अवमान करने की कोई शिकायत की जाती है तो जिस सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गई हो उसे पहले एक नोटिस दिया जाता है और संबंधित सदस्य को सभापति अथवा सदन के समक्ष प्रश्न से संबंधित ऐसे तथ्य, जो सदस्य के पास हों, रखने का एक अवसर दिया जाता है।

> 5 जून, 1967 को एक सदस्य ने लोक सभा के एक सदस्य के विरुद्ध अपमानजनक वक्तव्य देने के लिए एक अन्य सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी थी। चूंकि जिस सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गई थी वह सदन में उपस्थित नहीं था इसलिए सभापति ने यह टिप्पणी करते हुए शिकायतकर्ता सदस्य को विशेषाधिकार के प्रश्न के रूप में उस मुद्दे को उठाने की अनुमति नहीं दी कि वह उस सदस्य के विचार जानना चाहेंगे जिसके विरुद्ध शिकायत की गई है।[235]

> 23 दिसम्बर, 1980 को कुछ सदस्यों ने सदन में एक अन्य सदस्य द्वारा एक मंत्री के विरुद्ध कुछ आरोप लगाये जाने को लेकर उसके विरुद्ध विशेषाधिकार के उल्लंघन की सूचना दी थी। सभापति ने नियम 203 के अन्तर्गत यह मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। किंतु अगले ही दिन उन्होंने समिति को इस मामले पर विचार करने से रोक दिया ताकि वह संबंधित सदस्य को अपने विचार प्रकट करने का एक अवसर दे सके और भावी कार्यवाही की दिशा तय कर सके। सदस्य की टिप्पणियों पर विचार करने के पश्चात् ही सभापति ने समिति को प्रश्न पर आगे विचार करने का निदेश दिया।[236]

> एक बार एक सदस्य द्वारा समाचार-पत्रों में यथाप्रकाशित किसी सार्वजनिक वक्तव्य में किसी दूसरे सदस्य पर आक्षेप लगाने के लिए उसके विरुद्ध शिकायत की गई तो सभापति ने उस सदस्य को, जिस पर आक्षेप लगाए गए थे, अपनी स्थिति स्पष्ट करने हेतु व्यक्तिगत स्पष्टीकरण देने की अनुमति दे दी।[237]

दूसरे सदन के सदस्यों या अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें

एक ऐतिहासिक मामले में, लोक सभा के एक सदस्य द्वारा दिये गये एक भाषण में संसद् को ''अद्भुत संसद्'' (वंडरफुल पार्लियामेंट) की संज्ञा देने तथा ऊपरी सदन अर्थात् राज्य सभा को ''शरारती लोगों का समूह'' (पैक ऑफ अर्चिन्स) कहने से उत्पन्न हुए विशेषाधिकार के प्रश्न को 11 मई, 1954 को राज्य सभा में उठाये जाने की अनुमति मांगी गयी थी। राज्य सभा के सदस्यों ने राज्य सभा और उसके सदस्यों के संबंध में दिये गये वक्तव्य पर गंभीर आपत्ति प्रकट की थी।[238] उपर्युक्त सदस्य ने भी अगले दिन लोक सभा में इस आधार पर विशेषाधिकार का एक मुद्दा उठाया कि उन्हें राज्य सभा के सचिव द्वारा एक नोटिस भेजा गया है जिसमें उनसे एक आपत्तिजनक वक्तव्य के संबंध में कतिपय सफ़ाई/स्पष्टीकरण देने के लिये कहा गया है। अत: उन्होंने यह कहा था कि ऐसी कार्रवाई लोक सभा के अधिकारों और विशेषाधिकारों में हस्तक्षेप किये जाने के बराबर है।[239]

इस मामले पर विस्तार से विचार करने के पश्चात् सभापति और लोक सभा अध्यक्ष द्वारा यह निर्णय किया गया कि दोनों सभाओं की विशेषाधिकार समितियां इस प्रकार के मामलों के लिये, जब संसद् के दोनों सदनों में से किसी एक सदन के किसी सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने की कोई शिकायत हो, सहमति के आधार पर एक-समान प्रक्रिया तैयार करे। लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों ने 23 अगस्त, 1954 को दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत अपने संयुक्त प्रतिवेदन में यह सिफारिश की थी कि ऐसे किसी मामले में, जिसमें एक सदन के किसी सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी द्वारा विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने या दूसरे सदन का अवमान किये जाने का आरोप लगाया गया हो, निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन किया जाये:

(क) जब किसी सदन में विशेषाधिकार का उल्लंघन किये जाने का ऐसा प्रश्न उठाया जाता है जिसमें दूसरे सदन का कोई सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी अन्तर्ग्रस्त हो, तो पीठासीन अधिकारी उस मामले वाले सदस्य की बात सुनने या उस दस्तावेज की जांच करने के बाद जिस पर शिकायत आधारित हो, इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि विशेषाधिकार का उल्लंघन नहीं किया गया है या मामला इतना तुच्छ है, जिस पर ध्यान दिया जाये, तो ऐसी स्थिति में यह विशेषाधिकार के उल्लंघन के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सकता है।

(ख) इस तरह से भेजे गये मामले पर, दूसरे सदन का पीठासीन अधिकारी उस मामले को उसी ढंग से निपटायेगा जैसेकि वह उसी सदन या उसके किसी सदस्य के विशेषाधिकार के उल्लंघन का मामला हो।

(ग) तत्पश्चात्, पीठासीन अधिकारी उस सदन के पीठासीन अधिकारी को संदेश भेजेगा जिसमें विशेषाधिकार का प्रश्न मूलत: उठाया गया और साथ ही यदि जांच के संबंध में कोई प्रतिवेदन हो, तो वह उसे भेजेगा तथा विचारार्थ मामले पर की गयी कार्रवाई की सूचना भी देगा।

(घ) समितियों का यह विचार है कि यदि गलती करने वाला सदस्य, अधिकारी या कर्मचारी उस सदन के पीठासीन अधिकारी से, जिसमें विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया है या दूसरे सदन के पीठासीन अधिकारी से, जिसके पास यह मामला भेजा गया है, क्षमा-याचना करता है तो इस प्रकार की क्षमा-याचना के पश्चात् इस मामले में आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाये।[240]

विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक के अध्यक्ष (डा॰ कैलाश नाथ काटजू) ने लोक सभा में 2 दिसम्बर, 1954 को और सदन के नेता (श्री सी॰ सी॰ बिस्वास) ने राज्य सभा में 6 दिसम्बर, 1954 को प्रतिवेदन में अंतर्विष्ट सिफारिशों के अनुमोदन के लिए प्रस्ताव रखे। प्रस्ताव स्वीकृत हो गए।[241] बाद में सभापति को लोक सभा के अध्यक्ष का एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसके साथ संबंधित सदस्य का बयान संलग्न था जिसमें उसने कहा था कि राज्य सभा अथवा उसके सदस्यों का अनादर करने का उसका कोई इरादा नहीं था और यदि उसके वक्तव्य से ऐसा गलत आभास मिलता है तो उसे उसके लिए खेद है। बयान को ध्यान में रखते हुए सभापति का विचार था कि वे इस मामले को समाप्त मान सकते हैं।[242]

21 मई, 1979 को सभापति ने सदन को सूचित किया कि उन्हें लोक सभा के अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ है जो राज्य सभा के सदस्य श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा मंत्री के रूप में कार्य करते हुए 19 जनवरी, 1976 को लोक सभा में स्वेच्छा से आय और धन का विवरण प्रकट करते हुए गुमराह करने वाला कथित वक्तव्य देने के संबंध में लोक सभा में उठाए गए विशेषाधिकार के प्रश्न के बारे में है। श्री मुखर्जी से प्राप्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए मामले पर विचार करने के बाद सभापति ने मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने महसूस किया कि श्री मुखर्जी ने प्रतिवादात्मक वक्तव्य देकर विशेषाधिकार का कोई उल्लंघन नहीं

किया है और उन्होंने तद्नुसार सूचना दी है। राज्य सभा द्वारा इस मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई। लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा भी इस मामले में आगे कार्यवाही नहीं की गई।[243]

24 अगस्त, 1987 को उपसभापति ने सभा को सूचित किया कि उन्हें लोक सभा के अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ है जो राज्य सभा के सदस्य श्री अरुण सिंह द्वारा मंत्री के रूप में कार्य करते हुए रक्षा सौदे में कमीशन दिये जाने के विषय पर कथित रूप से गुमराह करने वाला वक्तव्य दिये जाने के संबंध में लोक सभा के सदस्य श्री सोमनाथ चटर्जी द्वारा विशेषाधिकार के प्रश्न की सूचना दिये जाने के बारे में है। संसद् के दोनों सदनों में हुई बहस के दौरान श्री अरुण सिंह के स्पष्टीकरण और वक्तव्यों को ध्यान में रखते हुए इस मामले पर विचार करने के उपरांत सभापति ने व्यवस्था दी कि श्री सिंह ने ऐसा कोई वक्तव्य नहीं दिया है जिसका अर्थ यह माना जाए कि उन्होंने जानबूझकर लोक सभा को गुमराह किया है और उसके विशेषाधिकार का उल्लंघन किया है। इसलिए, उन्होंने महसूस किया कि इस मामले पर आगे कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है।[244] सभापति ने अपने द्वारा की गई व्यवस्था की एक प्रति श्री अरुण सिंह की टिप्पणियों के साथ लोक सभा के अध्यक्ष को भेज दी थी। लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई।[245]

11 सितम्बर, 1992 को सभापति को लोक सभा के अध्यक्ष का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसके साथ लोक सभा के सदस्य श्री जॉर्ज फर्नांडिस द्वारा वित्त मंत्रालय में राज्य मंत्री श्री रामेश्वर ठाकुर के विरुद्ध दी गई सूचना की वह प्रति संलग्न की गई थी जिसमें समिति के कार्य में रुकावट डालने के उद्देश्य से प्रतिभूति घोटाले संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के कुछ सदस्यों को कथित रूप से प्रभावित करने का प्रयास करने का आरोप लगाया गया था। सभापति ने श्री ठाकुर से उनकी टिप्पणी मांगने के बाद मामला विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने इस पर विचार किया और निष्कर्ष निकाला कि इसमें विशेषाधिकार का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। सभा द्वारा इस मामले में आगे कोई कार्यवाही नहीं की गई।[246]

किसी सदस्य द्वारा दूसरे सदन में अथवा भारत में किसी राज्य विधान-मंडल में दिए गए भाषण के आधार पर विशेषाधिकार के उल्लंघन अथवा सदन के अवमान का कोई मामला नहीं बनता क्योंकि संसद् के प्रत्येक सदन और सभी विधान मंडलों की कार्यवाही विशेषाधिकारमुक्त हैं और एक सदन में दूसरे सदन में कही गई किसी बात के लिए कार्यवाही नहीं की जा सकती।

कांग्रेस संसदीय दल की एक बैठक में राज्य सभा के एक सदस्य ने दो मंत्रियों के विरुद्ध कुछ आरोप लगाए थे। 20 जून, 1967 को प्रधान मंत्री ने लोक सभा में एक वक्तव्य दिया और कहा कि सदस्य द्वारा दी गई सामग्री के आधार पर लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं होते। अगले दिन लोक सभा में विशेषाधिकार का प्रश्न उठाया गया कि चूंकि दोनों मंत्रियों, जो इस सभा के सदस्य हैं, के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं होते, इसलिए सारी सभा की बदनामी हुई है। एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि विशेषाधिकार का प्रश्न राज्य सभा के सभापति को दोनों सदनों की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक में विकसित की गई प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही किये जाने के लिए भेज दिया जाये। लम्बी बहस के बाद इस प्रस्ताव पर मत लिया गया और वह अस्वीकृत हो गया।[247] राज्य सभा में एक सदस्य ने इस आधार पर एक विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी कि राज्य सभा के एक अन्य सदस्य को लेकर विशेषाधिकार का मामला उठाया गया और दो मंत्रियों पर कुछ आरोप लगाने के लिए लोक सभा में उसे बुरा-भला कहा गया। सभापति ने यह टिप्पणी करते हुए चर्चा समाप्त कर दी कि:

> ....दूसरे सदन द्वारा हमारे सदस्य के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई। यदि कार्यवाही की गई होती, तो हम ध्यान देते। लोक सभा में जो कुछ हुआ, हमें उस पर चर्चा नहीं करनी चाहिए। लोक सभा के अध्यक्ष ने कहा कि वह स्वयं कार्यवाही कर सकते थे किन्तु वह दुविधा में थे और उन्होंने यह बेहतर समझा कि इस बात का निर्णय करना सभा पर छोड़ दिया जाये कि क्या शिकायत को आवश्यक कार्यवाही के लिए राज्य सभा के सभापति को भेजा जाए अथवा नहीं।[248]

30 मार्च, 1970 को, बहस के दौरान, एक सदस्य ने लोक सभा के एक सदस्य के विरुद्ध कतिपय आरोप लगाये थे। यह मामला लोक सभा में उठाया गया और वहां चर्चा के पश्चात् अध्यक्ष ने यह कहा कि वह इस मामले को राज्य सभा के सभापति के साथ उठायेंगे। लोक सभा अध्यक्ष ने, तद्नुसार, सभापति को एक पत्र

भेजा जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह विचार प्रकट किया गया था कि किसी एक सदन के सदस्य के लिये दूसरे सदन के सदस्यों पर सदन में आरोप लगाना या आक्षेप करना वांछनीय नहीं है। उसके उत्तर में सभापति, लोक सभा अध्यक्ष की समुक्तियों से सहमत थे और उन्हें यह सूचित किया कि संबंधित सदस्य ने राज्य सभा में जो कुछ कहा था, उपसभापति ने उसका पहले ही निरनुमोदन कर दिया था। तत्पश्चात् वह मामला वहीं पर समाप्त हो गया।[249]

एक अन्य मामले में, 2 सितम्बर, 1970 को एक सदस्य ने राज्य सभा में बहस के दौरान निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं:

''गत रात्रि अनेक सदस्यों को कुछ राजाओं (प्रिंसेज़) तथा महाराजाओं के आवासों पर ले जाया गया था और मैं जानता हूं कि एक मामले में जहां एक दल के एक सदस्य को एक महाराजा के निवास-स्थान पर ले जाया गया, जहां राजमाता ने उसे रिश्वत देने की कोशिश की थी। मैं उस सदस्य को आपके समक्ष हाज़िर करने के लिये तैयार हूं। मैं उनसे हाज़िर होने तथा इस संबंध में आपको जानकारी देने के लिये कह सकता हूं....''

3 सितम्बर, 1970 को, लोक सभा के एक सदस्य ने श्री भूपेश गुप्त के विरुद्ध इस आधार पर विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी थी कि राज्य सभा में की गयी उनकी उपर्युक्त टिप्पणियों में, जैसाकि 3 सितम्बर, 1970 के **नवभारत टाइम्स** में समाचार प्रकाशित हुआ था, श्री भूपेश गुप्त ने यह आरोप लगाया था कि चार ''आदिवासी'' और अन्य संसद्-सदस्यों ने संविधान (चौबीसवां संशोधन) विधेयक, 1970 के विरुद्ध लोक सभा में इसलिये मत दिया था क्योंकि उन्हें रिश्वत दी गयी थी। इस मामले को लोक सभा अध्यक्ष द्वारा राज्य सभा के सभापति के पास भेज दिये जाने पर, सभापति ने लोक सभा अध्यक्ष के पत्र के उत्तर में यह विचार प्रकट किया था कि:

श्री भूपेश गुप्त द्वारा लगाये गये आरोप, जिनका संसद्-सदस्य श्री राम चरण ने स्पष्टतया उल्लेख किया है, लोक सभा या राज्य सभा दोनों में से किसी एक के किसी विशिष्ट सदस्य से संबंधित नहीं हैं... इसलिये आप देखेंगे कि श्री भूपेश गुप्त ने किसी एक सभा के किसी सदस्य के संबंध में व्यक्तिगत रूप से उल्लेख नहीं किया है। मेरा सदा यह विचार रहा है कि एक सदन के सदस्यों को सदन में या उससे बाहर, दूसरे सदन के सदस्यों पर आरोप नहीं लगाना चाहिये और न ही आक्षेप करना चाहिये। राज्य सभा में, सभापीठ ने किसी सदस्य के इस प्रकार के व्यवहार को सदा अनुचित समझा है।[250]

जहां तक संसद् के किसी सदस्य द्वारा किसी राज्य विधान-मंडल का या किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदस्य द्वारा संसद् या किसी अन्य राज्य के विधान-मंडल का अवमान किये जाने का संबंध है, इस बारे में संसद् में एक परिपाटी बनायी गयी है और जब राज्य विधान-मंडल द्वारा संसद् के किसी सदस्य के विरुद्ध या संसद द्वारा किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदस्य के विरुद्ध कोई शिकायत की जाती है, तो उस स्थिति में वैसी ही प्रक्रिया का पालन किया जाता है। जब सभापति को किसी राज्य विधान-मंडल से इस तरह का कोई विचारणीय मामला प्राप्त होता है तो वह उस मामले की जांच करता है, यदि आवश्यक हो तो सदन के संबंधित सदस्यों से अपनी टिप्पणियां देने के लिये कहता है और फिर उस मामले का निर्णय करता हैं। तत्पश्चात् सभापति के निर्णय के संबंध में उस राज्य विधान-मंडल के अध्यक्ष/सचिव को सूचित किया जाता है, जिससे उक्त विचारणीय मुद्दा प्राप्त हुआ था।[251]

एक सदन दूसरे सदन की कार्यवाही पर टिप्पणी नहीं करेगा

चूंकि संसद् के प्रत्येक सदन का अपनी कार्यवाही पर अनन्य क्षेत्राधिकार है, इसलिए कोई भी सदन दूसरे सदन अथवा किसी राज्य विधान-मंडल की कार्यवाही के संबंध में निर्णय नहीं ले सकता। इसी प्रकार, राज्यों के विधान-मंडल भी संसद् के किसी सदन की कार्यवाही पर टिप्पणी नहीं कर सकते। राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन विषयक नियमों में किसी सदस्य द्वारा सदन में बोलते हुए लोक सभा अथवा किसी राज्य विधान-मंडल के कार्य संचालन अथवा कार्यवाही के बारे में कोई भी आक्रामक अभिव्यक्ति किए जाने की मनाही है।[252] सदस्यों से आशा की जाती है कि वे दूसरे सदन की कार्यवाही के संबंध में कोई भी टिप्पणी करते समय संयम से काम लेंगे। दूसरे सदन की कार्यवाही के संबंध में ऐसे उल्लेख अथवा

टिप्पणियां अनिवार्य रूप से नियमों में अनुचित हैं और उन्हें सदन की कार्यवाही से निकाल दिया जाता है। तथापि, सभापति ने कुछ मामलों में राज्य विधान-मंडलों की कार्यवाही के संबंध में, मामले के गुणावगुण पर विचार किए बिना ही, संवैधानिक मुद्दों पर चर्चा की अनुमति दे दी।

> एक अवसर पर अध्यक्ष की व्यवस्था के परिणामस्वरूप तमिलनाडु विधान सभा के कुछ सदस्यों को दल बदलने के आधार पर अयोग्य ठहराए जाने के मुद्दे को उठाए जाने की अनुमति दी गई थी। बहस के अंत में, सभापति ने टिप्पणी की:
>
> > राज्य विधान-मंडलों के पीठासीन अधिकारी स्वतंत्र प्राधिकारी हैं। वे संसद् के पीठासीन अधिकारियों के अपीलीय क्षेत्राधिकार में नहीं आते। वास्तव में उन्हें भी वही अधिकार प्राप्त हैं जो इसमें से किसी को प्राप्त हैं। किन्तु मैंने यह चर्चा किए जाने की अनुमति इसलिए दी थी कि माननीय सदस्य सुझाव दे सकें कि यदि भविष्य में इस प्रकार के मामले सामने आते हैं तो उनमें क्या किया जाना चाहिए और चूंकि इस तरह का मामला पहली बार उठा है, इसलिए कुछ सुझाव तो दिए गए हैं... किन्तु यह सभा तमिलनाडु विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा की गई कार्यवाही के गुण-दोष के संबंध में कोई मत प्रकट नहीं करती और इसलिए यह चर्चा पूरी तरह उन्हीं सुझावों तक सीमित है जो इस प्रकार की स्थितियों से निपटने के लिए संगत हैं।[253]
>
> इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर राज्य सभा के सभापति द्वारा ''उत्तर प्रदेश और राजस्थान की विधान सभाओं के अध्यक्षों का चयन करने हेतु अनुच्छेद 178 के अन्तर्गत संवैधानिक उत्तरदायित्व न निभा पाने के कारण उत्पन्न स्थिति'' से संबंधित एक विशेष उल्लेख स्वीकृत किया गया था। किन्तु कुछ सदस्यों ने इस आधार पर आपत्ति की थी कि राज्य विधान-मंडलों से संबंधित मामले सदन के अधिकार-क्षेत्र में नहीं आते। सभापति ने विशेष उल्लेख की अनुमति दिए जाने के पक्ष में बोलते हुए सभा का ध्यान अनुच्छेद 355 की ओर दिलाया था जिसमें यह उपबंध किया गया है कि यह सुनिश्चित करना संघ सरकार का कर्त्तव्य होगा कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई जाए। सभापति ने स्पष्ट किया कि 'प्रत्येक राज्य की सरकार' पदावलि में अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ संबंधित राज्य का राज्यपाल भी शामिल है और यदि वह अपने को सौंपे गए कार्यों को निष्पादित करने में समर्थ नहीं है तो यह सुनिश्चित करना संघ सरकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि राज्यपाल अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करे। तद्नुसार, राज्य सभा स्वत: ही इस तथ्य पर चर्चा करने का अधिकार रखती है। किन्तु, सभापति ने यह स्पष्ट किया कि राज्य सभा विधान सभा की इस प्रकार से आलोचना नहीं कर सकती है।[254]

सभापति द्वारा विशेषाधिकार के प्रश्नों को विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाना

सभापति को यह अधिकार है कि वह विशेषाधिकार अथवा सदन की अवमानना के किसी भी प्रश्न को उसकी जांच-पड़ताल और उसके संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने हेतु स्वत: उसे विशेषाधिकार समिति को सौंप दे।[255] ऐसे कई मामलों में सभापति ने ऐसे विषय को पहले सभा के समक्ष प्रस्तुत किए बिना ही उसे सीधे ही समिति को सौंप दिया है।[256] ऐसे भी कई मामले हुए हैं जबकि सभापति ने ऐसे विषय को सदन में किसी सदस्य द्वारा उठाए जाने की अनुमति दे दी और उसके बाद यह घोषणा की कि वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए उस मामले को समिति को सौंप रहा है।[257] इस संबंध में निर्धारित परिपाटी के अनुसार जब कभी सभापति ऐसे विषय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए विशेषाधिकार समिति को सौंपता है, तब सदस्यों को उसकी सूचना संसदीय समाचार (बुलेटिन) में एक पैराग्राफ के माध्यम से दे दी जाती है।[258] इन मामलों में समिति के प्रतिवेदन भी सदन में उसी प्रकार प्रस्तुत किए जाते हैं जिस प्रकार ये मामले सदन द्वारा समिति को सौंपे जाते हैं।

सामान्यत: सभापति किसी मामले को उसकी ''जांच-पड़ताल और उसके संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत किए जाने'' हेतु नियम 203 के अन्तर्गत विशेषाधिकार समिति को सौंपता है। किन्तु कई अवसरों पर

सभापति ने इन मामलों को ''उसे प्रतिवेदन प्रस्तुत करने,''[259] ''समिति के विचार जानने''[260] हेतु अथवा ऐसी स्थिति में जब राज्य सभा के किसी सदस्य से लोक सभा अथवा राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु उपस्थित होने का अनुरोध किया गया हो, ''एक उपयुक्त प्रक्रिया निर्धारित करने'' हेतु समिति को सौंपा है।[261]

ऐसे भी दो अवसर आए हैं जब सभापति ने विशेषाधिकार उल्लंघन के मामले को समिति को सौंपने की बजाए उसकी स्वयं जांच-पड़ताल की है और अपनी जांच के परिणाम से सभा को अवगत कराने के बाद उक्त मामले को बन्द कर दिया गया है।

> 5 जून, 1967 को एक सदस्य ने लोक सभा के एक सदस्य के विरुद्ध अपमानजनक वक्तव्य देने के संबंध में एक अन्य सदस्य के विरुद्ध विशेषाधिकार का प्रश्न उठाने की अनुमति मांगी। अगले दिन जिस सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गई थी, उसने आरोप को छोड़े बिना अथवा खेद व्यक्त किए बिना ही, जिसके लिए सभापति द्वारा परामर्श दिया गया था, एक वक्तव्य दिया। उसके बाद सभापति ने सदस्य को लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के लिए कहा। सभापति ने जांच-पड़ताल की और संबंधित सदस्य ने एक लिखित वक्तव्य दायर किया। उस वक्तव्य के आधार पर सभापति ने 19 जून, 1967 को सदन में एक घोषणा करते हुए उस मामले को बन्द कर दिया, इसमें सभापति ने अन्य बातों के साथ-साथ यह टिप्पणी भी की कि ''...जो सदस्य आरोपों को सिद्ध नहीं कर पाते हैं... उन्हें ऐसे वक्तव्य नहीं देने चाहिएं। सदस्यों द्वारा...लगाए गए आरोपों-प्रत्यारोपों से संसद् की मान-मर्यादा कम हो जाती है।'' उन्होंने 'मे' को भी उद्धृत किया जिन्होंने कहा था, ''सद्भावना और संयम संसदीय भाषा की विशेषताएं हैं। जब कोई सदस्य अपने विरोधियों के विचारों और आचरण की चर्चा कर रहा हो, तो उस समय ही संसदीय भाषा का प्रयोग किया जाना सबसे अधिक वांछनीय होता है।''[262]

> जोर्डन में एक राजमार्ग का ठेका किसी निजी कम्पनी और भारतीय खनिज एवं धातु व्यापार निगम को दिए जाने से संबंधित तारांकित प्रश्न संख्या 87 का उत्तर 3 मार्च, 1987 को राज्य सभा में दिया गया था। अनुपूरक प्रश्नों में इस बात पर बल दिया गया था कि संबंधित मंत्रालय ने उक्त ठेका देने में सरकारी उपक्रम की बजाय एक निजी कम्पनी को फायदा पहुंचाया है। संबंधित मंत्री और कुछ सदस्य यह चाहते थे कि इस मामले की सभापति द्वारा जांच करायी जाए। सभापति ने वैसा ही किया, उसने न केवल दस्तावेज मंगवाए, बल्कि उस सदस्य के जिसने पक्षपात का आरोप लगाया था और संबंधित सरकारी उपक्रम के अध्यक्ष के विचारों को भी व्यक्तिगत रूप से सुना और उक्त मामले में अपना निर्णय दिया।[263]

राज्य विधान-मंडल की किसी समिति के समक्ष साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए राज्य सभा के किसी सदस्य को बुलाए जाने संबंधी प्रक्रिया

राज्य सभा के सभापति को महाराष्ट्र विधान परिषद् के अध्यक्ष से एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें यह अनुरोध किया गया था कि महाराष्ट्र विधान परिषद् के भूतपूर्व और राज्य सभा के वर्तमान सदस्य, डा॰ श्रीकांत रामचन्द्र जिचकर को विशेषाधिकार के उल्लंघन और परिषद् के अध्यक्ष की अवमानना के प्रश्न से संबंधित उस परिषद् की विशेषाधिकार समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु राज्य सभा की अनुमति देने का अनुरोध किया गया था, क्योंकि परिषद् में विशेषाधिकार की सूचना प्रस्तुत करने वाले दो सदस्यों में से एक सदस्य डा॰ जिचकर थे। चूंकि राज्य सभा में ऐसा मामला पहले कभी नहीं आया था, इसलिए सभापति ने इस प्रयोजन के लिए एक उपयुक्त प्रक्रिया निर्धारित किए जाने हेतु इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। विशेषाधिकार समिति ने निम्नलिखित प्रक्रिया निर्धारित की:

> समिति की यह राय है कि सदन को अपने किसी भी सदस्य को लोक सभा अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष अथवा राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य देने के लिए तब तक अनुमति नहीं देनी चाहिए, जब तक उस सदस्य के उपस्थित होने के लिए स्पष्ट रूप से कारण एवं प्रयोजन बताते हुए विशिष्ट रूप से अनुरोध न किया गया हो और जब तक उस सदस्य की सहमति न हो, जिसकी कि उपस्थिति अपेक्षित है।

> सदन के किसी सदस्य को भी लोक सभा या किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष तब तक साक्ष्य नहीं देना चाहिए, जब तक वह पहले सदन की अनुमति प्राप्त न कर ले। इसके अतिरिक्त, जब कभी ऐसा अनुरोध प्राप्त हो, जिसमें लोक सभा अथवा किसी राज्य विधान-मंडल के किसी सदन अथवा उसकी किसी समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु किसी सदस्य के लिए सदन की अनुमति मांगी गई हो, तो उस मामले को सभापति द्वारा विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया जाए। समिति से प्रतिवेदन प्राप्त होने पर सभापति अथवा समिति के किसी सदस्य द्वारा सदन में इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाए कि सदन उक्त प्रतिवेदन से सहमत है और आगे की कार्यवाही सदन के निर्णय के अनुसार की जानी चाहिए।

उपर्युक्त मामले में समिति ने यह सिफारिश की कि चूंकि डा॰ जिचकर ने महाराष्ट्र विधान परिषद् की विशेषाधिकार समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए अपनी इच्छा की पुष्टि कर दी है, इसलिए उन्हें इसकी अनुमति दे दी जाए।[264] समिति का प्रतिवेदन 30 मार्च, 1993 को सदन द्वारा स्वीकृत कर लिया गया।[265]

उच्चतम न्यायालय और विशेषाधिकार का मामला

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 143 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए उत्तर प्रदेश विधान सभा और इलाहाबाद उच्च न्यायालय (**केशव सिंह मुकदमे**) के मध्य संघर्ष से उत्पन्न विषय पर बहुमत से यह राय व्यक्त की कि राज्य विधान-मंडलों को अनुच्छेद 194(3) के अंतर्गत दिए गए विशेषाधिकार मौलिक अधिकारों के अध्यधीन हैं और विधान-मंडलों को इस आशय का विशेषाधिकार नहीं है कि उनके साधारण आदेश भी निर्णायक समझे जाएं। उच्चतम न्यायालय ने **शर्मा के मुकदमे**[266] में यह मत व्यक्त किया कि इस मुकदमे में सभी मौलिक अधिकारों की प्रासंगिकता और उनके लागू होने का सामान्य मुद्दा उठाया ही नहीं गया। न्यायालय के अनुसार, अनुच्छेद 19(1)(क) के लागू न होने और अनुच्छेद 21 के लागू होने के मुद्दे को बहुमत के निर्णय से निपटाया जाए। न्यायालय ने आगे यह कहा:

> अनुच्छेद 194 के खण्ड 3 में अंतर्विष्ट उपबंधों के प्रभाव के संबंध में विचार करते हुए, जब भी ऐसा लगे कि इन उपबंधों और मौलिक अधिकारों से संबंधित उपबंधों में कोई विरोध है, तो उसे सद्भावपूर्ण व्याख्या के नियम को स्वीकार करते हुए हल करने का प्रयास करना होगा।[267]

उच्चतम न्यायालय के इस मत पर 1965 में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में चर्चा की गई थी। सम्मेलन में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि संविधान में संदेह से परे यह स्पष्ट करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि विधान-मंडलों और उनके सदस्यों तथा समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को किसी भी दशा में संविधान के किन्हीं अन्य अनुच्छेदों के अध्यधीन अथवा उनके अन्तर्गत होना नहीं माना जा सकता है। इस दौरान, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने विधान सभा की अपनी अवमानना के संबंध में कार्यवाही करने की शक्ति को उचित ठहराया है। इसलिए, उक्त संकल्प पर कोई कार्यवाही नहीं की गई।[268] 1984 में पुन: उच्चतम न्यायालय में लम्बित मामलों के संबंध में सम्मेलन ने एक अन्य संकल्प पारित किया, जिसमें **अन्य बातों के साथ-साथ** यह बात भी दोहरायी गयी कि भारत में विधायकों के पास सदन, उसके सदस्यों और समितियों के विशेषाधिकारों से संबंधित मामलों के संबंध में निर्णय लेने का अनन्य अधिकार है तथा इसमें कानूनी अदालतों अथवा किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।[269]

कानूनी प्रक्रिया

स्थापित परंपरा और अभिसमय यह है कि सभापति अदालत में उपस्थित होने की किसी सूचना का उत्तर नहीं देता है। इस संबंध में कुछ दृष्टांतों का यहां नीचे उल्लेख किया गया है:

> 1964 में सभापति को उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत सौंपे गए विशेष निर्देश (1964 का संख्यांक 1) के संबंध में (केशव सिंह के मुकदमे में) एक सूचना प्राप्त हुई। उक्त सूचना पर राज्य सभा में विभिन्न दलों/समूहों के नेताओं की एक अनौपचारिक बैठक में चर्चा की गई थी। बैठक में इस बात पर सर्वसम्मति व्यक्त की गई कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष निर्देश में राज्य सभा के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है। सदन इस पर सहमत था। सदन के सचिव को निदेश दिया गया कि वह उच्चतम न्यायालय को तद्नुसार सूचित कर दे।[270]
>
> 1974 में सभापति को उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति के निर्वाचन के बारे में संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत विशेष निर्देश के मामले में एक सूचना प्राप्त हुई थी। सामान्य प्रयोजन समिति द्वारा की गई सिफारिश का पालन करते हुए उक्त सूचना पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। सदन भी इस पर सहमत था।[271]
>
> 1987 में सभापति को उच्चतम न्यायालय से, दो संसद्-सदस्यों द्वारा संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 की वैधता को चुनौती देते हुए दायर की गई रिट याचिका का स्थानांतरण चाहने वाली भारत संघ द्वारा दायर स्थानांतरण याचिका के बारे में एक सूचना प्राप्त हुई थी। सभापति ने सदन को सूचित किया कि ''प्रथा के अनुसार, हम इस सूचना का उत्तर देने अथवा अदालत में उपस्थित होने का प्रस्ताव नहीं करते,'' और वह संबंधित पत्रों को विधि और न्याय मंत्री को इस मामले में ऐसी कार्यवाही करने के लिए भेज रहे हैं, जैसी वह उचित समझे। सदन इस पर सहमत हो गया।[272]

विदेशी राष्ट्रिक के संबंध में विशेषाधिकार का सीमा क्षेत्र

स्वराज पॉल के मामले में, लन्दन स्थित उद्योगपति श्री स्वराज पॉल के विरुद्ध मुम्बई से प्रकाशित एक साप्ताहिक पत्रिका को दिए गए एक साक्षात्कार में राज्य सभा के दो सदस्यों पर कथित रूप से आक्षेप लगाने के लिए विशेषाधिकार के प्रश्न हेतु सूचनाएं दी गई थीं। चूंकि यह अपनी तरह का पहला मामला था और एक ऐसे व्यक्ति के संबंध में जो भारत का राष्ट्रिक अथवा नागरिक नहीं हो। अधिकार-क्षेत्र और ऐसे मामलों में अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में कोई दिशा-निर्देश नहीं होने के कारण सभापति ने इस मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंप दिया। समिति ने श्री पॉल द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को माफ करने की भावना से लिया और इस मामले में आगे कोई कार्यवाही न करने की सिफारिश की, किंतु समिति ने क्षेत्राधिकार के संबंध में महान्यायवादी की राय ली, महान्यायवादी की राय यह थी कि संसद् किसी विदेशी राष्ट्रिक द्वारा देश की सीमाओं में की गई अवमानना के संबंध में उसके विरुद्ध व्यक्तिबन्धी क्षेत्राधिकार का उपयोग कर सकती है।[273]

विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किया जाना

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, संविधान के अनुच्छेद 105(3) में अन्य बातों के साथ-साथ संसद् के प्रत्येक सदन, उसके सदस्यों और उसकी समितियों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को संसद् द्वारा विधि के माध्यम से परिभाषित किए जाने के लिए छोड़ दिया गया है। संसद् द्वारा अब तक इस संबंध में कोई व्यापक विधि नहीं बनायी गयी है। इस संबंध में, इस विषय पर कानून बनाने के मुद्दे पर पीठासीन अधिकारियों के विभिन्न सम्मेलनों में समय-समय पर विचार किया गया है। प्रेस आयोग ने भी विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने का अनुरोध किया है। इन्हें संहिताबद्ध करने के पक्ष और विपक्ष में विभिन्न तर्क दिए गए हैं।[274] हाल ही में लोक सभा की विशेषाधिकार समिति ने इस विषय पर विभिन्न विचारों का एक अध्ययन आरंभ किया है। समिति यह मत व्यक्त करने पर बाध्य हो गई कि बहुमत की राय संसदीय विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध किए जाने के विरुद्ध है और उसने यह सिफारिश की कि ऐसा किया जाना उचित नहीं रहेगा।[275]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. मे, पृष्ठ 69
2. -वही- पृष्ठ 115
3. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑफ प्रिविलेजेज़ इन कैप्टन रैमज़े केस, हाउस ऑफ कॉमन्स, 164 (1939-40), पैरा 19 (कौल एंड शकधर, पृष्ठ 193)
4. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑफ प्रिविलेजेज़ इन लेविस केस, हाउस ऑफ कॉमन्स, 244 (1951), पैरा 22 (कौल एंड शकधर), -वही-
5. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑफ स्पीकर्स, 1956, पैरा 18 (कौल एंड शकधर), -वही-
6. अनुच्छेद 105(1)
7. अनुच्छेद 105(2)
8. -वही-
9. अनुच्छेद 122(1)
10. अनुच्छेद 122(2)
11. अनुच्छेद 361क
12. अनुच्छेद 361क(1), परंतुक
13. अनुच्छेद 105(3)
14. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, धारा 135क
15. नियम 222क और 222ख
16. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन (2.5.1958 को स्वीकृत)
17. विशेषाधिकार समिति का 33वां प्रतिवेदन (30.3.1993 को स्वीकृत)
18. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.3.1973, कालम 115-16 और 21.11.1983, कालम 415-18
19. नियम 84, 196, 208, 212ङ; 212ठ और 212न
20. अनुच्छेद 118(1)
21. एम॰ एस॰ एम॰ शर्मा **बनाम** श्री कृष्ण सिन्हा, ए॰ आई॰ आर॰ 1959, एस सी 395
22. नियम 265
23. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.12.1967, कालम 5236-52, 54 और 18.3.1982,कालम 232
24. -वही- 23.3.1982, कालम 370-72 और 26.8.1983, कालम 500-01
25. -वही- 24.12.1980, कालम 1-2 और 1.6.1990, कालम 1-2
26. नियम 256
27. राज्य सभा वाद-विवाद, 15.11.1976, कालम 162
28. तेज किरण जैन **बनाम** एन॰ संजीव रेड्डी, ए॰ आई॰ आर॰ 1970, एस सी 1573
29. एम॰ एस॰ एम॰ शर्मा, पूर्वोक्त
30. सुरेश चन्द्र बनर्जी **बनाम** पुनीत गोला , ए॰ आई॰ आर॰ 1951, कलकत्ता 176
31. सुरेन्द्र मोहन्ती **बनाम** नबकृष्ण चौधरी, ए॰ आई॰ आर॰ 1958, उड़ीसा 168
32. सतीश चन्द्र घोष, ए॰ आई॰ आर॰ 1956, कलकत्ता 433

33. उदाहरण के लिए अनुच्छेद 121

34. उदाहरण के लिए नियम 238 और 238क

35. नियम 238, 240, 261, 262, 255 और 256

36. विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 4

37. अनुच्छेद 88

38. अनुच्छेद 105(4)

39. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन, पूर्वोक्त

40. विशेषाधिकार समिति का बारहवां प्रतिवेदन, (20.12.1968 को स्वीकृत)

41. -वही-, गृह मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों आदि को लिखा गया पत्र, **देखिए** सं॰ 32/266/68-पी॰ 11 आई (ए)/डीएस, 13.6.1969; फाइल सं॰ 35/7/68-एल

42. एम॰एस॰एम॰ शर्मा, पूर्वोक्त

43. नियम 264

44. नियम 265

45. अनुच्छेद 105(2)

46. नियम 260

47. अनुच्छेद 361क

48. संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) अधिनियम, 1977 (धारा 3 और 4), 1956 का मूल अधिनियम फरवरी, 1976 और अप्रैल, 1977 के बीच निरसित (रद्द) रहा

49. एम॰एस॰एम॰ शर्मा, पूर्वोक्त

50. राज्य सभा वाद-विवाद, 2.3.1981, कालम 145

51. मे, पृष्ठ 87

52. विशेषाधिकार समिति का 29वां प्रतिवेदन, पैरा 10

53. एम॰ एस॰ एम॰ शर्मा, पूर्वोक्त

54. विशेषाधिकार समिति का 43वां प्रतिवेदन

55. विशेषाधिकार समिति का 19वां प्रतिवेदन, पृ॰ 2-4

56. -वही- पृष्ठ 6

57. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.1980, कालम 209-12, पूर्ण विवरण के लिए **देखिए** पार्लियामेंटरी प्रिविलेजेज, डाइजेस्ट ऑफ केसेज (1950-85) [जिसका उल्लेख बाद में 'डाइजेस्ट', के रूप में किया गया है], पृष्ठ 421-26

58. विशेषाधिकार समिति का बीसवां प्रतिवेदन

59. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.12.1980, कालम 1-2

60. विशेषाधिकार समिति का तीसरा प्रतिवेदन

61. राज्य सभा वाद-विवाद, 9.3.1959, कालम 3029-30

62. राज्य सभा वाद-विवाद, 12.8.1966, कालम 2483-91; राज्य सभा वाद-विवाद, 11.12.1963, कालम 3046-47 भी **देखिए**

63. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.3.1967, कालम 1152-54
64. -वही- 1.6.1972, कालम 55-58; डाइजेस्ट, पृष्ठ 427 भी **देखिए**
65. राज्य सभा वाद-विवाद, 27.03.1973, कालम 170-71; 31.03.1973, कालम 3-4; डाइजेस्ट, पृष्ठ 427 भी **देखिए**
66. -वही- 1.8.1973, कालम 181-82; 23.8.1973, कालम 116-118; डाइजेस्ट, पृष्ठ 431-32 भी **देखिए**
67. -वही- 10.5.1978, कालम 174-75; डाइजेस्ट, पृष्ठ 428 भी **देखिए**
68. -वही- 24.7.1980, कालम 85-86
69. विशेषाधिकार समिति का बाईसवां प्रतिवेदन
70. सुरेन्द्र मोहन्ती **बनाम** नबकृष्ण चौधरी, ए आई आर 1958, उड़ीसा 168
71. सब-कमेटी जुडिशियल एकाउन्टेबिलिटी **बनाम** भारत का संघ, ए॰ आई॰ आर॰ 1992, एस सी 320, पृष्ठ 353 पर
72. राज्य **बनाम** आर॰ सुदर्शन बाबू तथा अन्य, आई॰ एल॰ आर॰ (केरल) 1983, पृष्ठ 661-700
73. राजनारायण सिंह **बनाम** आत्माराम गोविन्द, ए॰ आई॰ आर॰ 1954, इलाहाबाद 319
74. -वही-
75. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन, पृष्ठ 5-6
76. फा॰सं॰ आर॰एस॰ 35/3ए/97-एल
77. विशेषाधिकार समिति का पहला प्रतिवेदन, पृ॰ 5-6
78. -वही- राज्य सभा वाद-विवाद, 2.5.1958, कालम 1290-95
79. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.02.1964, कालम 101
80. फाइल सं॰ 35/3/79-एल और 35/3/96-एल
81. मे, पृष्ठ 91 और 759
82. फाइल सं॰ 35/3/96-एल
83. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, धारा 135क
84. वेंकटेश्वरलू, ए॰आई॰आर॰ 1951, मद्रास 269 के मामले में
85. कुंजन नाडार **बनाम** राज्य, ए॰आई॰आर॰ 1955, त्रावणकोर-कोचीन 154
86. अंशुमाली मजूमदार **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य, ए॰आई॰आर॰ 1952, कलकत्ता 632
87. के॰ आनंदन् नाम्बियार, ए॰आई॰ आर॰1952,मद्रास 117 के मामले में
88. के॰ आनंदन् नाम्बियार **बनाम** मुख्य सचिव, मद्रास सरकार, ए॰आई॰आर॰ 1966, एस॰सी॰ 657
89. फाइल सं॰ 35/19/76-एल और 35/3/77-एल
90. राज्य सभा वाद-विवाद, 4.9.1970, कालम 50 और फाइल सं॰ 35/19/76-एल
91. -वही- 4.12.1978, कालम 249-51
92. -वही- 24.3.1966, कालम 4363-64
93. -वही- 26.3.1965, कालम 4685-86
94. -वही- 9.5.1974, कालम 121
95. नियम 2(1)
96. गृह मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों आदि को लिखा गया पत्र सं॰ I/16012/25/95-आई एस (डी-III) 19.6.1996
97. गृह मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों आदि को लिखे गए पत्र सं॰ 56/58/ज्यूडी॰, 14.4.1953 और 30.9.1953 और सं॰ 35/2/57-पी II, 8.2.1958
98. फाइल सं॰ 39/1/94-एल

99. नियम 222क और दूसरी अनुसूची
100. नियम 222ख और दूसरी अनुसूची
101. नियम 222ग
102. –वही– पहला परंतुक
103. –वही– दूसरा परंतुक
104. विशेषाधिकार समिति का चौबीसवां प्रतिवेदन और गृह मंत्रालय पत्र सं॰ I/13015/19/83/आई एस (डी–III) 29.3.1984 (फाइल सं॰ 35/26/83–एल में)
105. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3
106. विशेषाधिकार समिति का ग्यारहवां प्रतिवेदन
107. डाइजेस्ट, पृष्ठ 29
108. विशेषाधिकार समिति का इक्कीसवां प्रतिवेदन
109. –वही–
110. के॰ आनन्दन् नाम्बियार के पूर्वोक्त मामले में
111. डाइजेस्ट, पृष्ठ 29–30
112. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3–5
113. –वही– पृष्ठ 5–8
114. –वही– पृष्ठ 8–9
115. –वही– पृष्ठ 9–10
116. विशेषाधिकार समिति का चौंतीसवां प्रतिवेदन
117. विशेषाधिकार समिति का छत्तीसवां प्रतिवेदन
118. विशेषाधिकार समिति का इक्कीसवां प्रतिवेदन
119. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 13
120. राज्य सभा वाद–विवाद, 1.3.1977, कालम 28–32
121. फाइल सं॰ 35/19/76–एल
122. गृह मंत्रालय का पत्र सं॰ VII–11017/15/88–जी॰पी॰ए॰ II, 4.10.1988
123. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, पैरा 12 और विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पैरा 7
124. विशेषाधिकार समिति का सातवां प्रतिवेदन
125. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन
126. विशेषाधिकार समिति का अठारहवां प्रतिवेदन
127. मे, पृष्ठ 121; विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3 और विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2–3
128. विशेषाधिकार समिति का नौवां प्रतिवेदन
129. मे, पृष्ठ 127
130. विशेषाधिकार समिति का छब्बीसवां प्रतिवेदन
131. विशेषाधिकार समिति का आठवां प्रतिवेदन

132. विशेषाधिकार समिति का दसवां प्रतिवेदन

133. मे, पृष्ठ 121

134. एम॰ओ॰ मथाई का मामला (विशेषाधिकार समिति का दूसरा प्रतिवेदन); हिन्दुस्तान का मामला (विशेषाधिकार समिति का नौवां प्रतिवेदन); खुशवन्त सिंह का मामला (राज्य सभा वाद-विवाद, 16.8.1983, कालम 233-36); आचार्य रजनीश का मामला (राज्य सभा वाद-विवाद, 5.8.1986, कालम 156-57)

135. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.12.1981, कालम 202-04

136. संसदीय समाचार (1), 5.9.1974

137. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अक्तूबर, 1990), पृष्ठ 6–9

138. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन; विशेषाधिकार समिति का अठारहवां प्रतिवेदन, पैरा 13 और विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 3

139. विशेषाधिकार समिति का नौवां प्रतिवेदन

140. राज्य सभा वाद-विवाद, 11.9.1981, कालम 337–45

141. -वही- 22.12.1981, कालम 202-04

142. -वही- 11.9.1981, कालम 337–45 और 29.7.1983, कालम 204

143. -वही- 22.12.1981, कालम 202–04

144. विशेषाधिकार समिति का चौदहवां प्रतिवेदन

145. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.8.1983, कालम 236

146. -वही- 5.8.1986, कालम 156-57

147. विशेषाधिकार समिति का दूसरा, नौवां, चौदहवां, अठारहवां, अट्ठाईसवां और पैंतीसवां प्रतिवेदन

148. विशेषाधिकार समिति का तीसरा प्रतिवेदन, 9.3.1959 को स्वीकृत

149. विशेषाधिकार समिति का चौथा प्रतिवेदन, 20.9.1963 को स्वीकृत

150. विशेषाधिकार समिति का सातवां प्रतिवेदन, 10.12.1966 को स्वीकृत

151. राज्य सभा वाद-विवाद, 29.11.1967, कालम 1734-35, 5.4.1971, कालम 125–35 और 5.12.1980, कालम 151

152. विशेषाधिकार समिति का आठवां प्रतिवेदन

153. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.12.1966, कालम 5413–62

154. विशेषाधिकार समिति का तेरहवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 2 और 4

155. विशेषाधिकार समिति का सोलहवां प्रतिवेदन; राज्य सभा वाद-विवाद, 2.8.1967, कालम 1849-50 और विशेषाधिकार समिति का उनतीसवां प्रतिवेदन भी **देखिए**

156. मे, पृष्ठ 128

157. विशेषाधिकार समिति का इकतीसवां प्रतिवेदन

158. मे, बीसवां संस्करण, पृष्ठ 123-24

159. होमी डी॰ मिस्त्री **बनाम** नफीसुल हसन, आई॰ एल॰ आर॰ 1957, मुंबई 218; हरेन्द्र नाथ बरूवा **बनाम** देवकान्त बरूवा तथा अन्य, ए आई आर 1958, असम 160

160. मे, पृष्ठ 104, 109; सुशांत कुमार चंद **बनाम** अध्यक्ष, उड़ीसा विधान सभा, ए आई आर 1973, उड़ीसा 111

161. विशेषाधिकार समिति का उन्नीसवां प्रतिवेदन

162. फाइल सं॰ 35/27/80-एल

163. मे, पृष्ठ 110
164. विशेषाधिकार समिति का उन्नीसवां प्रतिवेदन, पैरा 21 और विशेषाधिकार समिति का बीसवां प्रतिवेदन, पैरा 6
165. नियम 259
166. नियम 255, 256
167. –वही–
168. हरद्वारी लाल का मामला, आई॰ एल॰ आर॰ (1977) 2, पंजाब तथा हरियाणा, पृष्ठ 269
169. यशवन्त राव मेघावले **बनाम** 1967, मध्य प्रदेश विधान सभा, ए॰आई॰आर॰ 1967, मध्य प्रदेश 95
170. डाइजेस्ट, पृष्ठ 745–46
171. –वही– पृष्ठ 747
172. –वही– 747–48
173. –वही– 748–49
174. –वही– 749
175. –वही– 749–50
176. मे, पृष्ठ 119
177. विशेषाधिकार समिति का सत्रहवां प्रतिवेदन, पैरा 11–14
178. राज्य सभा वाद–विवाद, 2.2.1980, कालम 53–54
179. –वही– 6.8.1980, कालम 265; राज्य सभा वाद–विवाद, 11.9.1981, कालम 337–45 भी **देखिए**
180. –वही– 2.2.1980, कालम 53–54
181. डाइजेस्ट, पृष्ठ 376
182. –वही– पृष्ठ 376–77
183. –वही– पृष्ठ 377
184. –वही– पृष्ठ 384
185. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1987), पृष्ठ 5–9
186. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1988), पृष्ठ 14–16
187. राज्य सभा वाद–विवाद, 31.3.1981, कालम 164–70
188. डाइजेस्ट, पृष्ठ, 115–16
189. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1986), पृष्ठ 10–11
190. राज्य सभा वाद–विवाद, 6.6.1964, कालम 910–15
191. डाइजेस्ट, पृष्ठ 270–71
192. –वही– पृष्ठ 271
193. –वही–
194. –वही– पृष्ठ 247
195. राज्य सभा वाद–विवाद, 8.4.1967, कालम 2927–33
196. डाइजेस्ट, पृष्ठ 90

197. डाइजेस्ट, पृष्ठ 525
198. –वही–, पृष्ठ 79–80
199. –वही–, पृष्ठ 454–55
200. राज्य सभा वाद–विवाद, 22.11.1955, कालम 52–59
201. –वही– 21.3.1978, कालम 126–127 और 136–37
202. डाइजेस्ट, पृष्ठ 479
203. राज्य सभा वाद–विवाद, 25.3.1982, कालम 163–69
204. विशेषाधिकार समिति का सत्ताईसवां प्रतिवेदन; अधिक ब्यौरे के लिए अध्याय–5 भी **देखिए**
205. विशेषाधिकार समिति का छब्बीसवां प्रतिवेदन; अधिक ब्यौरे के लिए अध्याय–5 भी **देखिए**
206. राज्य सभा वाद–विवाद, 19.2.1982, कालम 183–85
207. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1986), पृष्ठ 9–10
208. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1987), पृष्ठ 4
209. राज्य सभा वाद–विवाद, 25.2.1987, कालम 208–13
210. सभा पटल पर रखे गए पत्रों संबंधी समिति का प्रतिवेदन (विशेष प्रतिवेदन)
211. राज्य सभा वाद–विवाद, 28.3.1988, कालम 254–57
212. डाइजेस्ट, पृष्ठ 709–10
213. –वही– पृष्ठ 710
214. –वही– पृष्ठ 711–12
215. –वही– पृष्ठ 712–13
216. नियम 187
217. नियम 188
218. –वही–
219. नियम 189
220. राज्य सभा वाद–विवाद, 11.9.1981, कालम 223–84; 337–45
221. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पैरा 15
222. –वही– पैरा 21
223. –वही– पैरा 14 और 20
224. –वही– पैरा 20 और 28
225. नियम 190(1)
226. –वही– दूसरा परंतुक
227. राज्य सभा वाद–विवाद, 25.7.1978, कालम 185–98
228. नियम 190(1), पहला परंतुक
229. विशेषाधिकार समिति का सातवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 15; नौवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 21 और दसवां प्रतिवेदन, पृष्ठ 11
230. विशेषाधिकार समिति के सातवें, नौवें, दसवें, तेरहवें प्रतिवेदनों का पैरा 4, चौदहवें प्रतिवेदन का पैरा 3,पन्द्रहवें प्रतिवेदन का पैरा 4, अठारहवें प्रतिवेदन का पैरा 6 और संसदीय समाचार (1), 5.9.1974
231. नियम 190(2)

232. संसदीय समाचार (1), 5.9.1974

233. नियम 191; 230 का संदर्भ भी **देखिए (पीछे देखिए)**

234. विशेषाधिकार समिति का तीसवां प्रतिवेदन, पैरा 20 (श्रीमती सुशीला तिरिया, संसद्-सदस्य की गिरफ्तारी का मामला) और पैरा 28 (मौलाना ओबैदुल्लाह खान आज़मी, संसद्-सदस्य की गिरफ्तारी का मामला)

235. राज्य सभा वाद-विवाद, 5.6.1967, कालम 2213

236. विशेषाधिकार समिति का तेईसवां प्रतिवेदन, पैरा 3

237. राज्य सभा वाद-विवाद, 24.8.1995, कालम 241-62

238. -वही- 11.5.1954, कालम 5999-6000

239. लोक सभा वाद-विवाद, भाग (2), 12.5.1954, कालम 7162–69

240. लोक सभा और राज्य सभा की विशेषाधिकार समितियों की संयुक्त बैठक का प्रतिवेदन

241. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.12.1954, कालम 866-67

242. -वही- 8.12.1954, कालम 1134

243. डाइजेस्ट, पृष्ठ 361–64

244. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.3.1988, कालम 274–78

245. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1988), पृष्ठ 1–5

246. विशेषाधिकार समिति का बत्तीसवां प्रतिवेदन

247. कौल एण्ड शकधर, पृष्ठ 269-70

248. डाइजेस्ट, पृष्ठ 608

249. -वही- पृष्ठ 571

250. -वही- पृष्ठ 97

251. मामलों के लिए फाइल सं॰ 35/35/92-एल **देखिए**

252. नियम 238(iii)

253. राज्य सभा वाद-विवाद, 25.11.1986, कालम 182-83

254. -वही- 3.7.1980, कालम 1–4

255. नियम 203

256. उदाहरण के लिए, विशेषाधिकार समिति का दूसरा, तीसरा, छठा, बाईसवां, बत्तीसवां और पैंतीसवां प्रतिवेदन

257. उदाहरण के लिए, विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन (पैरा 4), अट्ठाईसवां प्रतिवेदन (पैरा 7) और इकतीसवां प्रतिवेदन (पैरा 2)

258. संसदीय समाचार (2), 22.3.1995, 12.5.1995, 14.12.1995, 1.3.1996 और 19.3.1996 **देखिए**

259. विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, पैरा 4

260. विशेषाधिकार समिति का छब्बीसवां प्रतिवेदन, पैरा 2

261. विशेषाधिकार समिति का तैंतीसवां प्रतिवेदन, पैरा 4

262. डाइजेस्ट, पृष्ठ 604-05

263. राज्य सभा वाद-विवाद, 6.5.1987, कालम 279–84

264. विशेषाधिकार समिति का तैंतीसवां प्रतिवेदन

265. राज्य सभा वाद-विवाद, 30.3.1993, कालम 300–09

266. एम॰ एस॰ एम॰ शर्मा, पूर्वोक्त

267. अनुच्छेद 143 के मामले में ए॰आई॰आर॰ 1965, एस सी 745

268. कौल एंड शकधर, पृष्ठ 241-42

269. -वही- पृष्ठ 244

270. राज्य सभा वाद-विवाद, 21.4.1964, कालम 51-52 और 24.4.1964, कालम 358-59

271. डाइजेस्ट, पृष्ठ 295

272. प्रिविलेज डाइजेस्ट (अप्रैल, 1988), पृष्ठ 17

273. विशेषाधिकार समिति का पच्चीसवां प्रतिवेदन, परिशिष्ट-4

274. कौल एंड शकधर, पृष्ठ 194–203

275. चौथा प्रतिवेदन (दसवीं लोक सभा) 10.12.1994 को लोक सभा के पटल पर रखा गया था